યુક્રાંદ

भगवान श्री के साहित्य का दिव्य प्रसाद

महावीर : मेरी दृष्टि में

पृष्ठ ८०० मूल्य ३०।०० रु.

(महावीर के जीवन, उनकी साधना व शिक्षा पर भगवान श्री के ३६ घंटे के प्रवचन)

(प्रकाशक : मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली–७)

भगवान श्री के सान्निध्य में विशेष ध्यान साधना शिविर

स्थल : माऊंट आबू । तिथियां : २५ सितंबर से २ अक्टूबर ७१ तक

संयोजक : स्वामी सत्य बोधि सत्व, जीवन जागृति केन्द्र,
(श्री जयंति भाई)
खाडिया चार रास्ता, अहमदाबाद–९
फोन : २४०८३

विशेषतायें : भगवान श्री प्रतिदिन ३ गहरे ध्यान प्रयोगों के कराने के साथ ही "निर्वाण-उपनिषद्" पर दो प्रवचन देकर कृतार्थ करेंगे ।

(अमरीका, फ्रांस, इटली, इंगलैण्ड के साधक बड़ी संख्या में उपस्थित होंगे)

कहा—अनकहे के पार

(और भगवान भी जब अपने रहस्य खोलते हैं ।)

•

प्रिय आत्मन्

प्रेम । मैं न भगवान हूं, न तीर्थंकर, न पैगम्बर ।

वस्तुतः तो मैं हूं ही नहीं ।

या, शून्यवत् हूं ।

किन्तु जब से स्वयं को शून्य जाना तभी से एक तमाशा देख रहा हूं ।

क्योंकि तभी से मैं एक दर्पण की भांति हो गया हूं ।

और जो भी मेरे पास आता है, वही अपनी तस्वीर मुझमें देख लेता है ।

इसलिये किसी को मैं भगवान भी दिखाई पड़ता हूं और किसी को शैतान भी ।

और इस सब पर मेरे पास हँसने के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है ।

मैं न किसी का समर्थन करता हूं, न विरोध—क्योंकि जो कुछ भी कह रहे हैं, वह स्वयं उनके संबंध में है और उससे मेरा कोई भी संबंध नहीं है ।

रजनीश के प्रणाम

१४—८—७१

दो गीत : दो अभिव्यक्तियां

ओफ ओ !
कितना झूठ ।
कैसा रे–ये माया जाल
अजब उधेड़ बुन
स्वयं बनाते हैं
स्वयं ही–फँस जाते हैं–रे !
एक ही उपाय है—निकलने का
बनायें न
कैसे संभव हो ये पर
सोये हैं हम—जाग जायें
बस इतना ही तो करना है ।

●

चीजें बदल जाती हैं रोज प्रतिपल
और आदमी भी
क्योंकि यही नियम है
लेकिन, मन पकड़ लेता है
खींच लेता है चित्र
और चाहता है—पुनः पुनः
वैसा ही चित्र बने ।
पर यह संभव नहीं होता ।
●●

स्वामी चैतन्य भारती
दिल्ली

पत्रों की पगध्वनियों से

(श्री शामसुन्दर जालन्धर को लिखा गया एक पत्र)

मेरे प्रिय ।
प्रेम ।
मृत्यु असत्य है ।
क्योंकि, शरीर मर नहीं सकता है ।
वह मरा ही हुआ है इसलिए ।
और आत्मा भी नहीं मर सकती है ।
क्योंकि, वह जीवन है ।
और जीवन मृत्यु कैसे हो सकता है ?
जो जो है, वह बस वही हो सकता है ।
अन्यथा होने का उपाय ही नहीं है ।
इसलिये (चूंकि कोई भी नहीं मरता, न शरीर, न आत्मा ।)
मृत्यु एक असत्य है ।
फिर भी जिसे मृत्यु कहते हैं, वह है तो ।
वह क्या है ?
वह शरीर और आत्मा का संबंध विच्छेद है ।
और पुनः नये शरीर का संयोग पुनर्जन्म है ।
जब तक शरीर की कामना है, तब तक पुनर्जन्म है ।
और जब यह कामना छूट जाती है, तब जीवन तो है
लेकिन पुनर्जन्म नहीं है ।
ऐसे जीवन का नाम ही मोक्ष है

रजनीश के प्रणाम
३१–३–७०

(श्री निरंजन एन. जोशी, राजकोट को लिखा गया एक पत्र)

मेरे प्रिय,
प्रेम । आपका पत्र पाकर अत्यन्त अनुगृहीत हूं ।
मैं आपका पत्र पढ़ रहा हूं और वृक्षों की शाखों पर पक्षी गीत गा रहे हैं ।
सूर्य अभी अभी निकला है, और उसकी किरणों में नहाये फूल नाच रहे हैं ।
मैं चाहता हूं कि आपका पत्र उन्हें पढ़ने दे दूं, लेकिन पता नहीं कि वे पढ़ने को राजी हों या न हों ?
और आपका प्रश्न तो निश्चय ही उनकी समझ में नहीं आयेगा !
लेकिन, जो उत्तर वे दें, वही मेरा उत्तर भी है ।
फूल किसलिये खिले हैं ?

क्या है उनका उद्देश्य ?
सूर्य किसलिये निकला है ?
क्या है उसका लक्ष्य ?
पक्षी क्यों गीत गा रहे हैं ?
क्या है उनका प्रयोजन ?
और जगत है तो क्यों है ?
परमात्मा है तो क्यों है ?
नहीं, फूल नाचते हैं और उत्तर नहीं देते।
न सूरज ही उत्तर देता है न पक्षी ही उत्तर देते हैं।
और परमात्मा तो बिल्कुल मौन है।
क्या अच्छा न होगा कि मैं भी मौन रहूं ?
लेकिन नहीं आप तो उत्तर चाहते हैं।
तब फिर यही कह सकता हूं कि न मेरा कोई लक्ष्य है, न प्रयोजन है। मैं हूं और उस होने से जो सहज हो रहा है वह हो रहा है
वहां सबको मेरे प्रणाम कहें।

रजनीश के प्रणाम
३१-३-७०

आचार्य श्री के प्रति

—स्वामी चैतन्य भारती दिल्ली

घना अन्धकार व्याप्त है चारों ओर
और—असीम अज्ञान में जीता हूं
सपने में भी
लिपट तेरी छाती से—प्रभु !
जोर जोर रोता हूं
चार हाथ लम्बी दाढ़ी है—मुंह पर मेरे
फ़िर भी लगता है
कि मैं तो
बच्चों से भी बच्चा हूं !
कि मैं तो—पागलों से भी
चार अंगुल—आगे हूं !
फिर भी,
हंसता हूं इस आशा में
आज, प्रतीती अंधकार की
बनेगी आधार
कल के उजाले का

आज पनघट हर अधर के पास आया !

(आचार्य रजनीश के प्रभावों को शब्दों में बांध पाना असम्भव है, क्योंकि हर शब्द पंगु है। उन्हें कुछ नाम देना भी पागलपन है क्योंकि वे अनाम हैं। पर हृदय के द्वारा अनुभूति अभिव्यक्ति चाहती है चाहे वह कितनी ही नपुंसक क्यों न हो।

सरस्वती का एक अदना-सा पुत्र कविता में कुछ कह रहा है। मैंने यह रोना-गाना उन कानों तक भी पहुंचा दिया है जिनके लिये यह है। मैं चाहता हूं कि यह रुदन 'युक्रांद' के द्वारा सबकी आँखों का विषय बने।)

काव्य हृदय की इस अभिव्यक्ति के साथ प्रस्तुत है यह गीत :

खोल दो अवरुद्ध मन की अर्गलाएँ,
द्वार पर देखो, अरे ! मधुमास आया।

ओ प्रणय के पथिक ! कुछ तो गुनगुनारे,
आ गई सब गोपियाँ यमुना किनारे।
आह ! जीवन के तिमिर में राह तकते,
आँख की राहों बहे किनारे पनारे।

अश्रु कण अब फिर छिपालो बादलों में,
आज नभ मे स्वाति का आभास आया।

युग बिताये गरल के दरम्यान जीते,
अश्रु धागों से अधर के गान सीते।
रिस गई सारे सुखों की लालिमा, अब—
बच रहे कंकाल के घट शुष्क रीते।

घट तुम्हारी प्यास अब घटने न पाये,
आज पनघट हर अधर के पास आया।

घोर तम ने चाँदनी गुमराह कर दी,
और धरती ने पहनली स्याह वरदी।
जिन्दगी ने आसमां में कुछ टटोला—
कुछ चकोरों ने बरफ-सी आह भर दी

ओ किनारो ! लहर के बंधन छुड़ा लो,
आज पूनम का नया उल्लास आया।

सीखचों में घुट गया दिन का उजाला,
खुल न पाया हृदय का यह वज्र ताला।
आँख की सब रोशनी दिन में जला दी,
रात को आया न आया आँख वाला।

आज कितना सहज है विश्वास मुझको,
देख ! मेरे घर स्वयं विश्वास आया।

किशोर 'काबरा" अहमदाबाद

दो प्यारी बूंदें :

हे प्यारे रजनीश,

लोग तेरी महिमा, लेश, यशोगान, तेरी प्रशंसा, विध-विध शब्दों में गाते हैं। तेरा उपकार अनेक विध शब्दों में मनाते हैं।

मुझे भी तेरी महिमा गाने की, तेरा उपकार मनाने की बहुत प्यास जाग उठी है।

लेकिन मैं तो बड़ी उलझन मे डूब गई हूं। मैं शब्दों के माध्यम से तेरी महिमा कैसे गाऊँ ? तेरा उपकार कैसे मनाऊँ ?

क्योंकि शब्द तो विचार सीमित हैं। और तेरा तो सब कुछ असीम और अनंत है। वे तेरी महिमा कैसे बता सक ? तेरी महिमा गाने की, तेरा उपकार मनाने की प्यास बढ़ती चली जा रही है। फिर भी मैं मौन हूं।

•

प्यारे रजनीश,

जब इस संसार में आयी तब बहुत कुछ पाने की इच्छा की। जिस दिन से तुझे देखा उस दिन से सिर्फ तुझे ही पाने की इच्छा शेष रही। और अब·····अब तो वह भी दिन प्रतिदिन घटती चली जा रही है। क्योंकि लगता है कि तू ही मेरे में बस गया है। और मैं मिट रही हूं। पिघल रही हूं। लगता है और आगे शेष में सिर्फ "तू" ही रहेगा।

सुश्री रमा, (राजकोट)

••

अनमोल बोल

- किसी की आज्ञा कभी मत मानो जब तक कि वह स्वयं की आज्ञा न हो।
- जीवन के अतिरिक्त और कोई परमात्मा नहीं है।
- सत्य स्वयं में है, इसलिए उसे और कहीं मत खोजना।
- प्रेम प्रार्थना है।
- शून्य होना सत्य का द्वार है, शून्यता ही साधना है, साध्य है, सिद्धि है।
- जीवन है—अभी और यहीं।
- जियो और जागे हुए।
- तैरो मत – बहो।
- मरो प्रतिपल ताकि प्रतिपल नये हो सको।
- खोजो मत। जो है–है। रुको और देखो।

मजे की बात : बातों का मजा

—मा योग सम्बोधि, जबलपुर

भगवान श्री रजनीश के संन्यासियों की बातें भी कभी-कभी मजेदार व सुनने जैसी होती हैं। ऐसे ही एक दिन की बात है मैं स्वामी अगेह भारती के साथ थी। एक पत्रकार मिले, उन्होंने पूछा : "कपड़े बदलने से क्या लाभ है ?" मुझे उनके प्रश्न में स्पष्ट विरोधी स्वर आभासित हुआ। खैर। अगेह भारती ने मुसकाते हुये कहा : "अब हम लाभ की चिन्ता में नहीं पड़ते, यही लाभ है।" उन्होंने पूछा—"आपको क्या आनन्द मिलता है ? क्या आपको कोई आनंद अनुभव होता है ?" अगेह भारती ने कहा : मेरा मानना है कि जब तक यह बताना पड़े कि आनंद अनुभव हो रहा है तब तक कोई आनन्द नहीं है। जब व्यक्ति आनन्द ही हो जाय तभी आनन्द है। पर तब उसे देखकर ही कुछ समझ में आता हो तो आये, उसके हृदय की पुलक, उसकी चाल की मस्ती। वह कह नहीं सकेगा कि उसे आनन्द का अनुभव हो रहा है। असल में आनन्द इतना अधिक है कि उसे कहना बेमानी है। और अगर कोई जिद करके पूछने ही लग जाय तो बहुत संभावना यह है कि वह कह दे कि मैं बिल्कुल आनन्द में नहीं हूं। इसलिये अगर आप यह जानना चाहते हैं कि आनन्द का अनुभव होता है या नहीं तो जिसे संन्यास ग्रहण किये ४-६ दिन ही हुये हों उससे मिलें और यह प्रश्न पूछें। वह निश्चित ही बहुत कुछ बता सकेगा।

ऐसे ही एक दिन एक मित्र ने अगेह भारती से कहा कि अब तो मालूम देता है आपकी पूजा करनी पड़ेगी। स्पष्ट ही उस आदमी ने बहुत करारा व्यंग किया था क्योंकि उसे पता था कि ये आचार्य रजनीश के शिष्य हैं। उसने निश्चित ही ऐसे उत्तर की आशा न की रही होगी जो भारती जी ने दिया। इन्होंने कहा "पूजा तो पत्थरों की हो रही है फिर मैं तो अधिक चेतन हूं। मेरे पास हृदय है, संवेदन है, बहुत कुछ है। कोई दिक्कत नहीं है मेरी पूजा होने में।"

स्वामी अगेह भारती के साथ होने का अवसर मुझे प्रायः लग जाता है और कई बार ऐसे-ऐसे डायलाग्स सुनने को मिल जाते हैं कि हृदय व मन भगवान श्री को स्मरण करने लगता है जिनका आलोक कहाँ-कहाँ पहुंच गया है और पहुंचता चला जा रहा है।

उस दिन भी बड़ा मजा आया, जब रेलवे स्टेशन पर मा योग क्रांति को विदा देने के बाद हम घर लौट रहे थे। प्लेट-फार्म पर एक सज्जन ने इन्हें अजीब ढंग से रोककर कहा कि : रजनीश अपने को भगवान क्यों कहने लगे हैं ? अगेह भारती ने चेहरे पर क्रोध का भाव लाते हुये कहा : क्या मैंने ठेका लिया है इन फालतू बातों के उत्तर देने का ? आप स्वयं रजनीश से पूछें। वे सज्जन कुछ सकपका से गये। तथापि उन्होंने कहा : क्या वे फालतू बातों का उत्तर देते हैं ? अगेह भारती नार्मल होते हुये कहने लगे : वे फालतू से फालतू आदमी को भी इन्टरटेन करते हैं। यह उन्हीं के वश की बात है। और हम सब फालतू बातें ही लेकर पहुंचते हैं पर वे जो उत्तर देते हैं वह हमारे फालतू प्रश्न को भी गरिमा दे देता है। जहाँ तक भगवान कहने की बात है पहली बात तो यह है कि रजनीश जी अपने को भगवान नहीं कहते, दूसरे लोग उन्हें भगवान रजनीश कहते हैं।

उस सज्जन ने पूछा : क्या आपकी समझ में यह ठीक है ?

अगेह भारती : मेरी समझ में यह बिल्कुल ठीक नहीं है। क्योंकि भगवान रजनीश कहने में पुनरावृत्ति (Repeatition) है। रजनीश माने भगवान, भगवान माने रजनीश। और जो भी उन्हें भगवान रजनीश कहते हैं उन सबको इस पुनरावृत्ति की गलती का पता है। पर दुनिया में ऐसे भी लोग हैं जो इसी भाषा को समझते हैं। और चूंकि यह साधारण घटना नहीं है, इसलिये रजनीश प्रेमियों का प्रेम ज्यादा से ज्यादा लोगों तक इस खबर को पहुंचा देना चाहता है। कम से कम मैं उन्हें भगवान रजनीश इसलिये ही कहता हूं ताकि इस भाषा में सोचने समझने वालों तक भी खबर हो जाय। अन्यथा मैं उन्हें 'भगवान' कहूं यह बिल्कुल अर्थहीन है। उसका इतना बड़ा प्रेम मिला है, वह इतना निकट है वह इतना 'मैं' है कि कुछ भी कहना अर्थहीन है।

अंत में एक बात कहना चाहती हूं कि यह बड़े आश्चर्य की बात है कि किसी ऐरे-गैरे को भगवान कहिये तो कोई भी आपत्ति नहीं करेगा। लेकिन जो भगवान की हैसियत का हो, जो भगवान ही हो, उसे भगवान कहने पर ही सदा विरोध होता है। आज तक के इतिहास में तो ऐसा ही होता आया है कि सदा ही हमने जिन्दा भगवान का विरोध एवं अपमान किया है और बाद में मर जाने पर उनकी पूजा की है। धन्य है प्रभु। तेरी लीला अपरम्पार है।

प्रभु की अनुकम्पा अपार है !

—स्वामी अगेह भारती, जबलपुर

जनवरी १९७१, बम्बई के भाई चंद्रकांत मकीम और अगेह भारती पूना—भगवान श्री रजनीश के प्रवचन सुनकर वापस आते समय अगेह भारती को रोना ही रोना आ रहा था भगवान श्री की करुणा पर। तभी चंद्रकांत ने एक संस्मरण सुनाया।

कि थोड़े दिनों पूर्व वुडलैण्ड [भगवान रजनीश-निवास] में एक अजीब घटना घटी। एक रजनीश प्रेमी डाक्टर रात के लगभग एक बजे वुडलैण्ड पहुंचे और भगवान श्री को जगाये। डाक्टर बड़े गुस्से व शिकायत से भर कर आये थे। पर भगवान श्री ने मुस्कराते हुये उनका स्वागत किया और कहा कि कहिये····· । उस डाक्टर ने बताया कि उनकी पत्नी [जो कि वह भी डाक्टर है और हाल ही में संन्यास ग्रहण किया है] आज जब वे डिस्पेंसरी से थक कर वापस लौटे तो शराब पीकर पूरा होश खोये बैठी थी और मेरे आते ही अनायास झगड़ा करने लगी। और वह इतनी आक्रामक हो गई कि अन्ततः मुझे घर छोड़कर भग आना पड़ा। मैं आपसे पूछना चाहता हूं कि आप ऐसे लोगों को संन्यास क्यों देते हैं ? क्या ऐसा ही है आपका संन्यासी ?

भगवान श्री ने परम शांति से मुस्कराते हुये उस डाक्टर मित्र से कहा : "आपसे मैं एक बात पूछना चाहता हूं। मान लें आप अपनी डिस्पेंसरी में हैं और मरीजों को देख रहे हैं। अचानक आप देखते हैं कि कोई सीरियस मरीज आ गया है। तो उस समय आप क्या व्यवहार करेंगे उसके साथ ?

डाक्टर ने कहा : "मैं उस समय दूसरे मरीजों को छोड़कर सीरियस केस को तुरन्त देखूंगा।"

भगवान श्री ने मुस्कराते हुये कहा : ऐसा ही यहाँ भी समझें। सीरियस मरीजों को दवा (संन्यास) जल्दी-जरूरी है इसलिये ही उसे संन्यास दिया। जो अपात्र है उसे ही संन्यास देना पड़ता है जो पात्र हो गया उसे क्या जरूरत ?"

चंद्रकांत ने कहा : 'भगवान श्री की इस बात से उस डाक्टर का सारा दुख व तनाव क्षण भर में विलीन हो गया और वह हँसता हुआ अनुग्रह से भर कर वापस लौटा।'

·· ·····यह संस्मरण सुनकर अगेह भारती के मुख से जोर से निकल गया : हे प्रभो ! तेरी अनुकम्पा अपार है !!

नव संन्यास की आधार शिलायें

(पिछले माहों बंबई क्रास मैदान में पंचमहाव्रत (अपरिग्रह) पर दिये गए भगवान श्री के प्रवचन से)

संकलन : **स्वामी योग चिन्मय**

प्रश्न : आचार्य जी, आप बहुत बार कहते हैं कि भौतिक संपन्नता आध्यात्म का आधार है, लेकिन अपरिग्रह पर हुये पिछले प्रवचन में आपने कहा है कि कम चीजें हों तो व्यक्ति कम गुलाम होता है और चीजें अधिक हों तो व्यक्ति अधिक गुलाम हो जाता है। कृपया संपन्नता और अपरिग्रह के इस मौलिक विरोधाभास को स्पष्ट करें, और साथ ही समझायें कि अधिक चीजें व्यक्ति को अधिक गुलाम कैसे बनाती हैं और पजेसर कैसे पजेस्ड हो जाता है ?

उत्तर : भौतिक संपन्नता आध्यात्मिक जीवन का आधार है, लेकिन आधार से ही कोई भवन निर्मित नहीं हो जाता। आधार भी हो, और भवन न उठाया जाय, यह हो सकता है। भवन तो बिना आधार के कभी नहीं होता। लेकिन आधार, बिना भवन के हो सकते हैं। कोई नींव को भरकर ही छोड़ दे तो भवन नहीं उठेगा, आधार जरूर होगे। लेकिन भवन हो तो बिना आधार के नहीं होता है। संपन्नता वीतरागता का आधार है। संपन्न हुये बिना कोई नहीं जान पाता कि संपन्नता व्यर्थ है, धन पाये बिना कभी कोई नहीं जान पाता कि धन से कुछ भी नहीं मिलता है। धन की जो सबसे बड़ी देन है, धन के भ्रम का टूट जाना है डिस इलूजनमेंट है। धन न मिले तो धन व्यर्थता का कभी भी पता नहीं चलता। विपन्न, दीन, दरिद्र धन से मुक्त होने में बड़ी कठिनाई पायेंगे। जो है ही नहीं उससे मुक्ति हुआ भी कैसे जा सकता है। मुक्त होने के लिए होना भी चाहिए और जो हमें मिल जाता है कल हम उससे ही मुक्त हो सकते हैं। इसलिए मैं निरंतर कहता हूं कि संपन्न समाज ही धार्मिक हो पाता है और यह भी संपन्नता ही व्यक्ति को धन के ऊपर अतिक्रमण में ले जाती है। लेकिन पिछली अपरिग्रह की चर्चा में जब मैंने यह कहा कि थोड़ी चीजें कम बांधती हैं, ज्यादा चीजें ज्यादा बांध लेती हैं, तो हो सकता है जैसा प्रश्न में पूछा गया अनेक मित्रों को लगा हो कि इन दोनों में कोई विरोधाभास नहीं है। कम गुलामी से छूटना बहुत मुश्किल है, ज्यादा गुलामी से छूटना संभव हो पाता है। जंजीरें बहुत कम हों, आदमी सह लेता है, जंजीरें बहुत ज्यादा हों तो बगावत हो जाती है। गरीबी आदमी की जंजीरें इतनी कम हैं कि उनको तोड़ने का ख्याल भी पैदा नहीं होता है। अमीर आदमी की जंजीरें भी बढ़ जाती हैं। तोड़ने का ख्याल भी पैदा होता है। इन दोनों में कोई विरोध नहीं है। वस्तुओं के बढ़ जाने पर ही पता चलता है कि मैंने व्यर्थ का बोझ इकट्ठा कर लिया है और ऐसा बोझ जो मैंने सोचा था, मुझे मुक्ति देगा। मुक्ति उससे नहीं मिली, सिर्फ मैं दब गया हूं। ऐसा बोझ जिससे मैंने सोचा था कि कोई उड़ान भर सकूंगा, उड़ान नहीं हुई, केवल मेरे पैर चलने असमर्थ हो गये। अधिक गुलामी स्वतंत्रता के निकट पहुंचा देती है और जैसे सुबह होने के पहले अंधेरा बढ़ जाता है ऐसा ही स्वतंत्रता की संभावना के पहले दासता बढ़ जाती है। संपन्न व्यक्ति गहरी गुलामी में है इसलिए गुलामी का बोध भी होता है। छोटी मोटी गुलामी के लिये हम एडजस्ट हो जाते हैं, समायोजित हो जाते हैं छोटी मोटी गुलामी हम पी और सह लेते हैं। जितनी बड़ी गुलामी हो उतना सहना मुश्किल होता है और छोटी गुलामी तो हम इस आशा में भी सह लेते हैं कि शायद कल गुलामी कम हो जाय। तो गरीब के पास भी कुछ है लेकिन उसे छोड़ने का ख्याल पैदा नहीं होता

क्योंकि उसकी जिन्दगी में तो जो नहीं है उसे पाने की दौड़ थी और पाने को कुछ भी नहीं रह जाता और फिर भी वह पाता है कि पाया कुछ भी नहीं गया। पाने को कुछ शेष नहीं रहा और पाया कुछ भी नहीं गया है। बाहर सब इकट्ठा हो गया और और भीतर पूरी रिक्तता खड़ी है। यह क्षण ही संपन्न आदमी के जीवन में आध्यात्मिक जीवन की शुरुआत है। यह उसकी पहली किरण है लेकिन मैं ऐसा नहीं कहता हूं कि सभी संपन्न आदमी इस क्रांति को उपलब्ध हो जाते हैं। अधिक संपन्न आदमी सिर्फ आधार बनाकर ही रह जाते हैं। जीवन में क्रांति का भवन कभी निर्मित नहीं हो पाता है लेकिन उसके भी कारण हैं और ऐसा भी नहीं है कि गरीब आदमी कभी आध्यात्मिक नहीं हो पाता है। गरीब आदमी भी आध्यात्मिक हो जाता है लेकिन उसके भी कारण हैं।

पहली बात तो यह ठीक से स्मरण में ले लेनी चाहिये कि अनुभव के अतिरिक्त और कोई ज्ञान नहीं है। अनुभव ही ज्ञान है। धन का अनुभव ही धन से मुक्ति लाता है और अगर एक व्यक्ति इस जीवन में गरीबी में भी आध्यात्मिक हो गया है तो उसके किसी न किसी जन्म की यात्रा में धन के अनुभव का कारण मौजूद होगा ही अन्यथा अनुभव के बिना ज्ञान नहीं है। धन के बिना, अनुभव के बिना कोई धन से मुक्त नहीं हो सकता है। जिसे हमने जाना नहीं वह व्यर्थ है, इसे भी हम कैसे जान सकेंगे। जिस दुख को हमने पाया नहीं वह छोड़ने योग्य है इस निष्कर्ष पर भी हम कैसे पहुंच सकेंगे। जो अपरिचित है वह शत्रु है इसकी पहचान को भी तो कोई संभावना नहीं है। शत्रु को भी पहचानना हो तो परिचित हो जाना जरूरी है और गलत को भी जानना हो तो गलत से गुजरना पड़ता है और राह के गड्ढे उन्हीं को पता होते हैं जो राह के गड्ढों में गिरते हैं और भटकते हैं। इसके अतिरिक्त जीवन में कोई उपाय भी नहीं है। हां, यह हो सकता है कि जिसे हम जीवन कहते हैं वह बहुत छोटा है। जीवन की यात्रा बहुत लम्बी है और एक आदमी अपने पिछले जन्मों में धन के अनुभव से इतना सचुरेट, इतना पूरा हो चुका हो कि इस जन्म में गरीबी से भी अध्यात्म में छलांग संभव हो जाय अन्यथा और कोई कारण नहीं हो सकता और अगर इस जन्म में भी कोई धन को पूरा पाकर फिर भी दीन और दरिद्र बना रहता है, धन को पूरी तरह पाकर भी धन से मुक्त नहीं होता और मैं कहना चाहूंगा कि जो धन से मुक्त होता है उसी ने धन को पूरी तरह पाया है। इसका प्रमाण देता है। धनी वही है जो धन को छोड़ पाता है। अगर नहीं छोड़ पाता है तो उसके भीतर दीन और दरिद्र बैठा हुआ है। अगर इस जन्म में भी कोई पूरी तरह धन को पाकर धर्म की प्यास जगाने में असमर्थ है तो इसका एक ही अर्थ है कि उसके बहुत पिछले जन्म इतनी दीनता और दरिद्रता में कटे हैं कि इतना भी धन उसके दीनता के अनुभव को नहीं काट पा रहा है। उसके भीतर की दरिद्रता खड़ी ही रह गई है। वह अभी भी भीतर दरिद्र है। धन का अनुभव नया है। वह अनुभव का ज्ञान नहीं पाया। बहुत बार अनुभव गुजरे तो ज्ञान बनता है। ज्ञान बहुत से अनुभव का सार संक्षिप्त है। ज्ञान बहुत से अनुभव के फलों का इत्र है। इस आदमी के लिए धन का अनुभव पहला है। अभी धन का अनुभव उसका ज्ञान नहीं बन पाया है। जैसे ही धन का अनुभव ज्ञान बनता है वैसे ही व्यक्ति धन से मुक्त होने लगता है।

मेरी बात दोनों एक ही अर्थ रखती है। उनमें कोई विरोध नहीं है। ऐसे ही मैं निरंतर कहता हूं, जिसने कभी शास्त्र नहीं जाने, वह कभी शास्त्र से मुक्त न हो सकेगा। जिसने शास्त्रों को जाना वह शास्त्रों से मुक्त हो जाता है। ऐसे ही मैं कहता हूं जिसने क्रोध नहीं जाना वह क्रोध से मुक्त न हो सकेगा लेकिन जिसने क्रोध की पूरी पीड़ा और अज्ञान जानी वह क्रोध से मुक्त हो जाता है। ऐसे ही मैं कहता हूं कि जिसने काम नहीं, वासना नहीं जानी वह कभी काम वासना से मुक्त न होगा। जो काम वासना को जानता है वह उसकी परिधि के बाहर हो जाता है। अनुभव मुक्ति है क्योंकि

अनुभव ज्ञान है। धन का अनुभव भी धन के बाहर ले जाता है।

प्रश्न—आचार्य जी, इसी संदर्भ में, विरोधाभास पर प्रश्न कर रहा हूं। आप निरंतर कहते हैं और अभी आपने कहा है, कोई भी किसी गहरे उतर कर ही व्यक्ति कामना और वासनाओं का अतिक्रमण कर पाता है, उससे मुक्त हो जाता है लेकिन अपरिग्रह के पिछले प्रवचन में आपने कहा कि वासनाएं कामनाएं वृत्ताकार हैं, सर्कुलर हैं, वे कहीं भी तृप्ति नहीं बनतीं। कृपया इस विरोधाभास को स्पष्ट करें।

उत्तर—वासनाओं के अनुभव से ही व्यक्ति वासनाओं से मुक्त होता है क्योंकि अनुभव के अतिरिक्त कोई मार्ग ही मुक्ति का नहीं है। संसार ही द्वार है मोक्ष का और नर्क ही द्वार है स्वर्ग का और कारागृह ही द्वार है मुक्ति का। जितनी पीड़ा अनुभव होती है संसार में वही पीड़ा संसार के पार ले जाने के लिए मार्ग बन जाती है ऐसा मैं निरन्तर कहता हूं। यह भी मैंने कहा, वृत्तियां कभी तृप्त नहीं होती हैं, वर्तुलाकार हैं, सर्कुलर हैं। उनमें दौड़ते जाइये, कहीं अंत नहीं आता। जितना भी दौड़िये आगे रेखा सदा शेष रह जाती है और भी दौड़िये रेखा शेष रह जाती है। जैसे कोई व्यक्ति गोल घेरे में दौड़ता हो तो गोल घेरा कहीं समाप्त नहीं होता। वृत्तियां कहीं समाप्त नहीं होतीं। कोई वृत्ति कभी पूरी तृप्त नहीं होती लेकिन दूसरी तरफ मैं कहता हूं वृत्ति के गहरे अनुभव से ही व्यक्ति मुक्त होता है। ये दोनों बातें विरोधी दिखाई पड़ती हैं लेकिन विरोधी नहीं हैं। व्यक्ति तृप्त नहीं होता गहरे अनुभव से। गहरे अनुभव से मुक्त होता है। तृप्त हो जाय तब तो मुक्ति की कोई जरूरत ही नहीं है। तृप्त नहीं होता है यही तो मुक्ति में ले जाने का कारण बनता है। हजार बार दौड़ चुका एक ही गोल घेरे में, पाता है वहीं वहीं, दौड़ता है, वहीं वहीं दौड़ता है, कोल्हू के बैल की तरह दौड़ता है और तृप्ति नहीं होती। यह अनुभव ही वृत्ति का गहरा अनुभव है कि दौड़ता है बहुत, खोजता है बहुत, पा भी लेता है फिर भी खाली हाथ रह जाता हूं। और एक बार नहीं अनेक बार इस अनुभव की गहराई में जो उतर जाता है, ऐसा नहीं कि उसकी वृत्ति तृप्त हो जाती है, बल्कि ऐसा कि वह दौड़ना बन्द करके खड़ा हो जाता है, क्योंकि वह कहता है कि दौड़ चुका इसी राह पर, वहीं वहीं, वर्तुलाकार दौड़ रहा हूं, कहीं पहुंचता नहीं हूं। कहीं कभी पहुंचता नहीं हूं। यह अनुभव की गहराई अगर उसे लगता है कि दो कदम और दौड़ लूं तो शायद पहुंच जाऊं तो समझिये अभी अनुभव इतना गहरा नहीं हुआ कि दौड़ने से मुक्ति हो जाय। अगर वह कहे कि एक चक्कर और लगा लूं, शायद अब तक नहीं मिले, अब मिल जाय तो समझना कि अभी भी अनुभव पूरा नहीं हुआ। अनुभव के पूरे का अर्थ वृत्ति का तृप्त हो जाना नहीं, अनुभव के पूरे होने का अर्थ दौड़ का तृप्त हो जाना है। अब दौड़ नहीं रही। जाना बहुत बार, दौड़े बहुत बार, पहुंचे कहीं भी नहीं। अब वह आदमी खड़ा हो गया है, अब आप उससे कितना ही कहें एक कदम पर सोने की खदान है तो वह कहता है, मैंने हजार कदम चलकर देख लिया सोने की खदान सिर्फ दिखायी पड़ती है, है नहीं। आप कितना ही कहें कि जरा आगे बढ़ो और सब मिल जायगा जो चाहा तो वह आदमी कहता है, जो जो मैंने चाहा वह वह मैंने कभी नहीं पाया। अब मैं इतना पा गया हूं कि चाहना पाने का मार्ग नहीं है। यह अनुभव की गहराई है। वह यह कहता है कि मैंने दौड़ा और मंजिल नहीं मिली। आप कहें कि जरा तेजी से दौड़ो तो मंजिल मिल सकती है। वह आदमी कहता है मैंने बहुत तेजी से दौड़ के देखा। मैंने हांफ के देख लिया। मैं पसीने पसीने हो गया हूं, जन्मों से दौड़ रहा हूं, एक बात जान पाया हूं कि मंजिल दौड़कर नहीं मिलती। अब मैं खड़े होकर मंजिल पाने की कोशिश और कर लेता हूं। चाह से मुक्ति, चाह की तृप्ति नहीं है। चाह से मुक्ति, चाह का टोटल चाह का संपूर्ण रूप से व्यर्थ हो जाना है। संपूर्ण रूप से व्यर्थ हो जाना मैं कह रहा हूं। अगर आंशिक रूप से चाह व्यर्थ हुई तो नई चाह पकड़ लेगी। संपूर्ण रूप से चाह व्यर्थ हो गई है तो फिर चाह नहीं पकड़ सकेगी। ऐसी जो चित्त की दशा है जहां चाह

ही व्यर्थ हो गई है, यह फ्रस्ट्रेशन की दशा नहीं है, यह अतृप्ति की दशा नहीं है, क्योंकि जहां फ्रस्ट्रेशन है वहां अभी चाह व्यर्थ है यह पता नहीं चला। फ्रस्ट्रेशन का मतलब, विषाद का मतलब है, एक चाह पूरी करनी चाही थी वह पूरी नहीं हुई लेकिन आशा मन में अभी है कि वह पूरी हो सकती थी। सफल मैंने होना चाहा था, असफल हुआ लेकिन मन में आशा है कि और कुछ उपाय किये जाते तो सफल हो सकता था। वही आदमी विषाद को, चित्त के दुख को फ्रस्ट्रेशन को उपलब्ध होता है जिसकी आशा नहीं मरती, सिर्फ असफलता आती है लेकिन जिसकी असफलता ही नहीं, आशा भी मर जाती है वह विषाद उपलब्ध नहीं होता, वह अचाह को डिजायरलेसनेस को उपलब्ध हो जाता है। वह खड़ा हो जाता है। वह कहता है दौड़ तो व्यर्थ है, दौड़ के बहुत खोजा, अब खड़े होकर पा लें और मजे की बात है कि जो दौड़कर कभी नहीं मिला वह खड़े होते ही मिल जाता है क्योंकि जिसे हम खोज रहे हैं वह हमारे भीतर है। क्योंकि जिसे हम खोज रहे हैं वह हमारे साथ है क्योंकि जिसे हम खोज रहे हैं वह हमें सदा से ही मिला हुआ है, इसलिये जितना दौड़ते हैं उतना ही उससे चूक जाते हैं जो मिला हुआ है। अपने घर में देखने के लिये बाहर दौड़ना बन्द करना पड़ेगा। अपने भीतर देखने के लिये बाहर यात्रा छोड़नी पड़ेगी। जो निकट है उसे देखने के लिये दूर से आँख लौटानी पड़ेगी। जो साथ में है उसे खोजने के लिये दूसरे की मुट्ठियों को खोलना बन्द करना पड़ेगा। अनुभव की गहराई वासना की तृप्ति का नाम नहीं है। अगर वासना ही तृप्त हो सकती तो महावीर नासमझ हैं। अगर वासना तृप्त हो सकती तो बुद्ध पागल हैं, अगर वासना तृप्त हो सकती तो जीसस को मनस चिकित्सा होनी चाहिये, साइको एनालिसिस होनी चाहिये। वासना तृप्त नहीं हो सकती। बुद्ध ने कहा है कामना दुष्पूर है, वह कभी पूरी नहीं हो सकती है लेकिन यह अनुभव के बाहर ले जाता है और जो वासना से नहीं मिला था वह निर्वासना में मिल जाता है। अनुभव की पूर्णता वृत्ति की, वासना की पूर्ण विफलता का नाम है और तब अपरिग्रह का फूल खिलता है। जिसकी वृत्तियां गिर गयीं, जिसकी चाहें गिर गयीं उसके भीतर अपरिग्रह का फूल खिलता है। तब वह दौड़ता नहीं, ठहर जाता है। खड़ा हो जाता है। तब मंजिल दूर नहीं होती, पैरों के नीचे हो जाती है। तब पाने को कुछ बाहर नहीं होता, पाने वाला ही अपने पाने की अंतिम, अपनी दौड़ का अंतिम लक्ष्य बन जाता है। पाने वाला ही, खोजने वाला ही खोज हो जाता है "दी सीकर बिकम्स दी सीकिंग, दी सीकर बिकम्स दी साट।" वह जो भीतर खोज रहा है वह पाता है कि मैं अपने को ही खोज रहा था। लेकिन शायद (दर्पणों) में खोज रहा था। बहुत दर्पणों में खोजा, नहीं मिला। अब वह दर्पणों को छोड़कर अपने को देखता है और पाता है कि दर्पण में मैं कभी मिल भी नहीं सकता था क्योंकि दर्पण में मैं ही प्रतिबिंबित हो रहा था' दर्पण में कोई था नहीं, सिर्फ भ्रम था एक। एक झूठे आकाश का भ्रम था। दर्पण में जो दिखाई पड़ा था वह कहीं था नहीं। दर्पण में कहीं भी न था और अगर था तो दर्पण के बाहर था लेकिन दर्पण में कोई खोजने निकल पड़ा है।

हम सब दर्पण में खोज रहे हैं। जिस दिन बहुत दर्पणों को तोड़कर और सिर को तोड़कर और दर्पणों से टकरा कर लहू लूहान होकर एक दिन आदमी दर्पण की तरफ पीठ फेर कर खड़ा हो जाता है और कहता है अब दर्पणों में खोज चुका, अब दर्पणों में नहीं खोजूंगा उसी दिन उसे पता चलता है कि जिसे वह खोज रहा था वह उसका ही प्रतिबिंब था। वासनाओं के दर्पण में हमने अपने ही चेहरे पकड़े हुए हैं, वासनाओं के दर्पण में हम अपने को ही खोज रहे हैं। प्रत्येक व्यक्ति स्वयं को खोज रहा है जहाँ प्रतिफलन है, रिफलेक्शन है। वहां नहीं, जहाँ सत्य है, खोज रहा है वहाँ। सत्य अभी है, खोज रहा है कभी। सत्य प्रतिपल है, खोज रहा है भविष्य में। सत्य है भीतर, खोज रहा है बाहर। इस प्रतीति का हो जाना, अनुभव की गहराई है। वासनाएं वृत्ताकार हैं। वे कभी पूरी नहीं होतीं लेकिन दौड़ने वाला दौड़ दौड़ के अनुभव को उपलब्ध हो जाता

है। वृत्त को छोड़ देता है। वृत्ताकार, सकुलर वासनाओं से हटकर खड़ा हो जाता है और जिस दिन कोई व्यक्ति अचाह में डिजायरलेसनेस में खड़ा हो जाता है उस दिन उसको पाने को कुछ शेष नहीं रह जाता। वह सभी कुछ पा लेता है।

प्रश्न—आचार्य जी, पहले प्रश्न में एक चीज और समझनी है। पजेशन अपने मालिक को, पजेशर को कैसे सम्मोहित कर लेते हैं, पजेस्ड कर लेते हैं ? इसके क्या कारण हैं ?

उत्तर—मालिक बनने की आकांक्षा में ही गुलामी के बीज छिपे हैं क्योंकि जिसके हम मालिक बनेंगे उसके हमें अनजाना गुलाम भी बन जाना पड़ता है। गुलाम इसलिए बन जाना पड़ता है कि जिसके हम मालिक बनते हैं हमारी मालकियत उस पर निर्भर होती है। उसके बिना हमारी मालकियत नहीं हो सकती और जब मालकियत किसी पर निर्भर होती है तो हम अपनी मालकियत के मालिक कैसे हो सकते हैं ? मालिक तो वही हो गया है जिस पर वह निर्भर होती है। अगर दस गुलाम मेरे पास हैं तो मैं दस गुलामों का मालिक हूं लेकिन मेरी मालकियत दस गुलामों के होने पर निर्भर है। अगर ये दस गुलाम खो जायं तो मेरी मालकियत भी खो जायगी, उस मालकियत की कुंजी मेरे पास नहीं है दस गुलामों के पास है। ये दस गुलाम बहुत गहरे में मेरे मालिक हो गये हैं क्योंकि इनके बिना मैं मालिक न हो सकूंगा और जिनके बिना हम मालिक न हो सकें उनके हम मालिक कैसे हो सकते हैं। जिनके बिना हमारी मालकियत गिर जायेगी जाने अनजाने उनके हम गुलाम हो गये हैं, हम उनसे बंध गये हैं और मजे की बात यह है कि गुलाम तो मुक्त भी होना चाहेगा क्योंकि गुलामी में कोई रहना नहीं चाहता। इसलिए अगर मालिक मर जाय तो गुलाम प्रसन्न होंगे लेकिन अगर गुलाम मर जाय तो मालिक रोयेगा। अब हमें सोचना चाहिए कि गुलाम इन दोनों में कौन था ? रोता है या जो हंसता है ? मालकियत की आकांक्षा गुलाम बना देती है। सिर्फ वही आदमी इस दुनिया में मालिक है जो किसी का मालिक नहीं होना चाहता है, सिर्फ वही आदमी मालिक हो सकता है जिसने किसी को गुलाम नहीं बनाया है। क्योंकि उसकी मालकियत को खत्म नहीं किया जा सकता। उसकी मालकियत स्वतन्त्र है। मालकियत अगर स्वतंत्र न हो तो मालकियत कैसे हो सकती है ? वस्तुएं भी हमारी छाती पर बैठ जाती हैं। वस्तुएं भी हमारे ऊपर हो जाती हैं। दी पजेसर बीकम्स दि पजेस्ड, वह जो वस्तुओं को संभाले हुए हैं वह धीरे धीरे भूल ही जाता है कि वस्तुएं उसकी सेवा के लिए थीं और उसने कब वस्तुओं की सेवा करना शुरू कर दी। इसका उसे पता भी नहीं चलता। नहीं चलेगा पता। नहीं चलेगा इसलिए कि वस्तुएं इस आदमी के पास नहीं आयी हैं, यह आदमी वस्तुओं के पास गया है। गुलाम ही जाते हैं, मालिक कभी नहीं जाते। आप जिसके पास जायेंगे मालकियत उसी को मिल जाएगी। वस्तुएं आपके पास कभी नहीं आतीं। आप वस्तुओं के पास जाते हैं। आदमी वस्तुओं को खोजता है, वस्तुएं आदमी को नहीं खोजती हैं। तो जिसे आप खोजते हैं, जिसके लिए आप श्रम उठाते हैं, जिसके लिए आप कष्ट झेलते हैं जिसे आप बमुश्किल से पाते हैं तो अगर उसे आप छाती पर रखकर संभाल लें और उसके नीचे दब जायें तो बहुत आश्चर्य नहीं। क्योंकि सदा डर है कि वह खो न जाय।

मैंने सुना है कि रयाकान नाम के एक जेन फकीर के घर एक रात चोर घुस गए। रयाकान उस चोर के सामने हाथ जोड़कर खड़ा हो गया और उसने कहा माफ करो, बड़ी गलत जगह आ गये। लेकिन आठ दस मील की यात्रा करके आये हो और इस गरीब के झोपड़े में तो कुछ भी नहीं है। बस एक कम्बल है। यह तुम ले जाओ। उसने चोर को वह कम्बल दे दिया। रयाकान नंगा हो गया है। क्योंकि उसके पास कम्बल ही था और ठंडी रात थी। उस चोर ने बहुत कहा कि आप यह क्या कर रहे हैं। आपके पास कुछ भी नहीं है फिर भी आप यह कम्बल दे रहे हैं ? तो

रैयाकान ने कहा कि याद रखना आज तू एक मालिक के घर में घुस गया है। अब तक तू गुलामों के घर में घुसा था। वे कोई भी तुझे एक चीज न दे सकते थे। जिनको तू सोचता है, जिनके पास बहुत है वे तुझे एक चीज न दे सकते थे लेकिन अब तू याद रखना कि ऐसे मालिक भी हैं जिनके पास कुछ नहीं है। असल में वे मालिक इसीलिए हैं कि उनके पास कुछ नहीं है। यह कम्बल तू ले जा, वह चोर कम्बल लेकर चला गया। जैसे चांद आज निकला है ऐसे ही उस रात भी चांद था। रैयाकान अपने दरवाजे पर बैठ गया। सर्द रात, चांद की किरणें, ठंडी हवायें वह कांपने लगा। अगर वह एक गुलाम आदमी रहा होता तो उसने कहा होता कि बहुत बुरा हुआ कि कम्बल चोरी चला गया; कम्बल उसने दे दिया। लेकिन वह तो मालिक था। उसके मन में उस लगती हुई सर्दी को देखकर यह ख्याल नहीं आया कि कम्बल चला गया तो बहुत बुरा हुआ। उसने एक गीत लिखा उस रात। उसने लिखा कि कश, यह चांद भी मैं चोर को भेंट कर सकता। बेचारा चोर चोरी के चक्कर में है। चांद ऊपर है। इसे देख भी नहीं पा रहा है।

यह एक मालिक की बात है। आप कम्बल को ओढ़े हुए दिखाई पड़ते हैं इस भूल में मत पड़ना। अक्सर कम्बल ही आपको ओढ़े रहता है। अक्सर हीरे जवाहरात आपके गले को पहने रहते हैं। आप बड़े मकान में रहते हैं, इस भूल में मत रहना कि आप बड़े मकान में रहते हैं। मकान आपस में चर्चा करते तो वह कहते कि मैं किस आदमी के भीतर रह रहा हूं। मकान के भीतर आप रहते हो यह संभव नहीं है। मकान इतना भीतर आपके रहता है कि आप मकान के भीतर कैसे रह सकते हैं। दी पजेसर बिकम्स दी पजेस्ड। वह जो वस्तुओं का मालिक है, वस्तुओं का गुलाम होता है। लेकिन इसमें वस्तुओं का कोई कसूर है ऐसा मत समझ लेना। वस्तुओं का कोई हाथ ही नहीं है। यह बिल्कुल एक तरफा लेन देन है। यह आप ही हैं जो गुलाम बन जाते हैं। यह आपकी ही दृष्टि और सोचने का ढंग है जो गुलामी ले आती है। वस्तुओं का इसमें कोई भी हाथ नहीं है। वस्तुयें किसी को क्या गुलाम बनायेंगी। वस्तुओं को पता ही नहीं चलता है कि किसी आदमी को मालिक होने का भ्रम था और किस आदमी को गुलाम होने का भ्रम न था। हम ही, आदमी ही अपनी दृष्टियों से घिरता और बंधता है। हाथ में पड़ी हुई जंजीरों के बीच भी कोई आदमी मुक्त हो सकता है? और आभूषण के बीच में बैठा हुआ आदमी भी कारागृह में हो सकता है। जिन्दगी बड़ी अद्भुत है। और आदमी से ज्यादा इरछी-तिरछी चाल चलने वाला कोई भी प्राणी नहीं है। वह अजीब काम कर रहा है। गुलामियों के नाम बदलकर मालकियत रख लेता है। जंजीरों के नाम आभूषण रख लेता है और कारागृह के भीतर हो तो दीवालों को इतना सजा लेता है कि मालूम पड़ता है अपने घर में बैठा है। हम सब अपने-अपने कारागृह की दीवालों को सजाये हुए बैठे हैं। हमने उन्हें बड़े अच्छे नाम दिये हैं। अच्छे नामों में हम खो गये हैं लेकिन सत्यों को नाम देकर बदला नहीं जा सकता है। सत्य, सत्य है और धर्म की शुरुआत सत्यों को उनकी सच्चाई में जानने से शुरू होती है। धर्म का, अपरिग्रह बुनियादी तत्व है। अपरिग्रह का अर्थ है इस सत्य को जान लेना कि जब तक मेरे मन में वस्तुओं की चाह है तब तक मैं वस्तुओं का मालिक नहीं हो सकता हूं। जब तक मैं वस्तुओं को चाहता हूं तब तक मैं वस्तुओं की गुलामी में रहूंगा ही। मैं उसी दिन वस्तुओं का मालिक हो सकता हूं जिस दिन वस्तुओं की चाह मेरे भीतर से चली जायेगी।

सुना है मैंने, सुना होगा आपने भी। एक संन्यासी एक राजमहल में एक रात आया था। उसके गुरु ने उसे भेजा है कि वह जाये और उस सम्राट के दरबार में जाकर ज्ञान सीख आये। गुरु परेशान हो गया था। नहीं सीख पाया तो उस संन्यासी ने कहा है, आपके आश्रम में नहीं सीख सका, तपस्चर्या की दुनिया में, तो सम्राट के महल में कैसे सीख सकूंगा। लेकिन उस गुरु ने कहा, बात मत करो। जाओ वहीं पूछना। जब वह दरबार में पहुंचा है तो शराब के प्याले ढल रहे हैं और वेश्यायें

नाच रही हैं। उसने कहा मैं भी पागल कहाँ फँस गया हूं। उस गुरु ने भी खूब मजाक की। देखता हूं छुटकारा पाना चाहता है मुझसे। लेकिन रात अब लौटना तो उचित भी नहीं है। और उस सम्राट ने बहुत आवभगत की है। और उसने कहा आज रात को तो रुक ही जाओ। उसने कहा लेकिन अब रुकना बेकार है। तो उसने कहा कल सुबह स्नान करके भोजन करके वापस लौट जाना। रात भर उस सन्यासी को नींद न आ सकी। सोचा कैसा पागलपन है। जहाँ शराब ढलकाई जा रही हो और जहां वेश्यायें नाचती हों और जहां धन ही धन चारों तरफ बरसा हो, वहां इस भोग विलास में कहां ज्ञान मिलेगा। और ब्रह्मज्ञान का मैं खोजी आज की रात मैंने व्यर्थ गवाई। सुबह उठा और सम्राट ने उससे कहा, चलें हम महल के पीछे नदी में स्नान कर आयें। वह स्नान करने गये हैं। वे स्नान कर रहे हैं और तभी जोर की आवाजें गूंजने लगीं। महल में आग लग गई है। नदी के तट से ही महल में उठी लपटें आकाश में दौड़ रही हैं। सम्राट ने संन्यासी से कहा देखते हैं। सन्यासी भागा। उसने कहा क्या खाक देखते हैं। मेरे कपड़े घाट पर रखे हैं, कहीं आग न लग जाये लेकिन घाट पर पहुंचते पहुंचते उसे ख्याल आया सम्राट के महल में आग लगी है और वह अब भी पानी में खड़ा है और उसकी लंगोटी घाट पर रखी है। उसे बचाने के लिए मैं दौड़ पड़ा हूं। अभी वहां आग भी नहीं लगी है। लग सकती है। महल की आग बढ़ जाये और घाट तक आ जाय। वह वापस लौटकर खड़े हुए हँसते सम्राट के चरणों में गिर पड़ा। उसने कहा, मैं समझ नहीं पा रहा हूं आपके महल में आग लग गई है और आप यहीं खड़े हैं। सम्राट ने कहा, उस महल को अगर मैंने कभी अपना समझा होता तो खड़ा नहीं रह सकता था। महल महल है, मैं मैं हूं। मेरा महल कैसे हो सकता है। मैं नहीं था तब भी महल था, मैं नहीं रहूंगा तब भी महल होगा। मेरा कैसे हो सकता है। लंगोटी थी आपकी, महल मेरा नहीं है।

नहीं सवाल वस्तुओं का नहीं है कि वस्तुएँ किसको पकड़ लेती हैं। सवाल आदमी के रुख, आदमी के ढंग, एटीट्यूड, उसके सोचने की विधि और जीवन की व्यवस्था का है। वह कैसे जी रहा है इस पर सब निर्भर करता है। अगर वह वस्तुओं की चाह में भरा है तो फिर कोई फर्क नहीं पड़ता कि वह महल है या लंगोटी। अगर वह वस्तुओं की चाह से नहीं भरा है तो कोई फर्क नहीं पड़ता कि पास में लंगोटी हैं या महल। आदमी ही अपने ही कारणों से गुलाम होता है और आदमी ही इन्हीं कारणों को तोड़कर मुक्त हो जाता है।

प्रश्न : आचार्य जी, आपने अपरिग्रह के तीसरे प्रवचन में कहा है कि महावीर संन्यास जीवन में बादशाह हो गये लेकिन उनके भाई आदि रिश्तेदार राजा रहकर भी दरिद्र ही बने रहे। तो महावीर का आत्मिक समृद्धि उपलब्ध करना, लेकिन भौतिक समृद्धि से परे रहना अर्थात् अपरिग्रह से मुक्त हो जाना क्या लोगों को दरिद्रता की ओर उत्प्रेरित नहीं कर रहा है?

उत्तर : महावीर सब छोड़कर चले गये। इसलिये नहीं कि वह समृद्धि थी। महावीर सब छोड़कर चले गये इसलिये नहीं कि वहाँ कुछ छोड़ने योग्य था। बल्कि इसलिये कि वहां कुछ पकड़ने योग्य न था। लेकिन हमें दिखाई पड़ता है कि उन्होंने महल छोड़ा, हमें दिखाई पड़ता है, हीरे जवाहरात छोड़े, हमें दिखाई पड़ता है धन दौलत छोड़ी। यह हमें दिखाई पड़ता है। महावीर ने तो कंकड़ पत्थरों के अतिरिक्त कुछ भी नहीं छोड़ा। हीरा जवाहरात हमें दिखाई पड़ते हैं, महावीर को हीरे जवाहरात में कंकड़ पत्थर दिखायी पड़ते हैं। ऐसे हीरे जवाहरात में कंकड़ पत्थरों के अतिरिक्त कुछ है भी नहीं। तो जिन्होंने महावीर की कथा लिखी है उन्होंने लिखा है कि इतने हीरे, इतने जवाहरात, इतने माणिक, इतने मोती छोड़े। अगर कोई महावीर से पूछे तो वह कहेंगे, बड़े पागल हो। कंकड़ पत्थरों के भी अलग अलग नाम रख लिये हैं? हां, अगर महावीर ने कंकड़ पत्थर छोड़े होते तो हम भी नहीं कहते कि कंकड़ पत्थर छोड़ रहे हैं। हम सब ने छोड़े हैं। सभी बच्चे कंकड़ पत्थर इकट्ठे करते हैं और फिर एक दिन

बच्चे नहीं रह जाते और कंकड़ पत्थर छोड़ देते हैं। लेकिन किसी बच्चे की जिन्दगी में हम नहीं लिखते कि इस बच्चे ने कंकड़ पत्थर छोड़े। क्योंकि हम जानते हैं कि वे कंकड़ पत्थर हैं। जिस दिन हम जानेंगे कि महावीर ने कंकड़ पत्थर छोड़े, उस दिन हम न कहेंगे कि उन्होंने कुछ छोड़ा। नहीं, आश्चर्य यह नहीं है कि महावीर ने क्यों छोड़ा। आश्चर्य यह है कि दूसरे क्यों नहीं छोड़ पाते हैं। महावीर से कोई पूछे तो वह नहीं कहेंगे कि मैंने कुछ त्यागा, क्योंकि त्यागी तो वह चीज जाती है जिसमें कोई मूल्य हो। महावीर कहेंगे कि मैंने कुछ भी नहीं त्यागा क्योंकि जिसमें कोई मूल्य ही नहीं था उसके त्याग की बात करनी ही व्यर्थ है। आप रोज अपने घर के बाहर कचरा फेंक देते हैं। अखबार में खबर नहीं छपती कि आज इतना कचरा त्यागा। महावीर के लिए जो कचरा हो गया है उसे त्यागने का हक तो उसे देना चाहिए न, कि इतना भी हक उन्हें देने को हम राजी नहीं हैं। हाँ, हमें दिक्कत है, हमें वह कचरा दिखाई नहीं पड़ता। एक बच्चे से कंकड़ पत्थर छीनें तब आपको पता चल जायगा। वह रात भर रो सकता है, सपने में चीख सकता है। उसकी सारी संपत्ति छीन ली गई, जो नदी के किनारे से वह इकट्ठी कर लाया था। आप कहेंगे पागल है तू। क्योंकि कंकड़ पत्थर बच्चे को सब रंगीन पत्थर, हीरे मोती से ज्यादा कीमती लगते हैं। असल में बच्चे की चेतना के तल और आपकी चेतना के तल में जो फर्क है वही कठिनाई है। आपको पत्थर दिखायी पड़ रहे हैं, बच्चे को बहुमूल्य दिखाई पड़ रहे हैं। आप फेंकने का आग्रह करते हैं, बच्चा बचाने का आग्रह करता है। महावीर और हमारे बीच वह बच्चे और प्रौढ़ वाला फासला है। और फिर एक नयी चेतना है जो महावीर को मिली है, जहाँ इस जगत में हमें जो भी दिखाई पड़ता है उसका सारा मूल्य खो गया, वह निर्मूल्य हो गया है। महावीर कुछ छोड़ते नहीं हैं, चीजें छूट जाती हैं। जो व्यर्थ हो गयी हैं उन्हें ढोना असम्भव है। महावीर छोड़कर जाते नहीं हैं। जाते हैं, चीजें छूट जाती हैं। जो व्यर्थ हो गया है उसे ढोना संभव नहीं है। महावीर के बड़े भाई घर रह गये हैं। महावीर के बड़े भाई दुखी हैं कि उनके छोटे भाई ने भूल की। हीरे जवाहरात, धन दौलत, यश, सुख सुविधा छोड़कर चला गया है। इन दोनों के बीच प्रौढ़ और बच्चों के मनों का फासला है। महावीर के बड़े भाई दुखी हैं कि दुख उठाने जा रहा है यह। और महावीर तो दुख उठाने नहीं जा रहे हैं। महावीर तो इतने आनंद से भर गये हैं कि दुख का कोई उपाय ही न रह गया है। लेकिन पूछा जा सकता है कि वे वहीं घर भी तो रह सकते थे। जैसे मैंने अभी सम्राट की बात कही। जो महल में था लेकिन महल जिसमें नहीं था। महावीर वहां भी रह सकते थे, लेकिन व्यक्ति-व्यक्ति के टाइप और प्रकार की बात है। महावीर नहीं रह सकते थे। कृष्ण रह सकते हैं, जनक रह सकते हैं। बुद्ध नहीं रह सकते थे। यह व्यक्तियों की बात है और व्यक्ति परम स्वतंत्रता है और नियम एक दूसरे पर थोपे नहीं जा सकते। महावीर के लिए जो संभव था वह संभव हुआ। महावीर के भीतर जो फूल खिल सकता था वह खिला। लेकिन यह फूल खिलने के भी अपने आनंद हैं। महल में महल के न होकर रहने का अपना आनंद है। महल के बाहर वृक्ष के नीचे रहने का अपना आनंद है। और दोनों की कोई तुलना नहीं हो सकती, कंपेरजन नहीं हो सकता। व्यक्तियों पर निर्भर करेगा। महावीर जब सब छोड़कर चले गये और वृक्षों के नीचे भिक्षा पात्र लेकर गांव गांव भटकने में कौन सा आनंद होगा? इस बात को समझना थोड़ा जरूरी है क्योंकि अपरिग्रह बड़ी कीमती और बड़ी गहरी बात है। महावीर की समझ ऐसी है कि जब श्वांस मैं नहीं लेता और जन्म मैं नहीं लेता, जन्म अपने से आता है, श्वांस अपने से आती है, मृत्यु अपने से आती है तो जीवन की व्यवस्था भी मैं अपने पर क्यों लूं। उसे भी परमात्मा पर छोड़ देते हैं। वही करे व्यवस्था। यह परम आस्तिकता का लक्षण है, यह परम आस्तिकता का। व्यवस्था भी क्यों? कल सुबह होगी, सूरज निकलेगा, नहीं निकलेगा तो हमने क्या व्यवस्था की है? कल अगर सुबह सूरज नहीं निकला और रात उसने रेजिगनेशन भेज दिया, इस्तीफा दे दिया या कल बिल्कुल हड़ताल पर चला गया,

स्ट्राइक पर चला गया और कल सुबह नहीं निकला तो हमारे पास क्या उपाय है, हम क्या करेंगे ? और कल हवाओं से अगर आक्सीजन विदा हो जाय और कल अगर जिन्दगी असंभव हो जाय तो क्या करेंगे ? हमने क्या सुरक्षा की है, क्या व्यवस्था की है ? कल अगर पृथ्वी ठण्डी हो जाय या कल पृथ्वी टूट जाय और बिखर जाय —अनेक पृथ्वियां टूट चुकी हैं, अनेक बिखर रही हैं, अनेक .सूरज ठण्डे हो चुके हैं। अनेक ठण्डे हो रहे हैं। कल अगर यह हो जाय तो हमने क्या व्यवस्था की है। महावीर कहते हैं कि इतने बड़े कामकाज में, इतने अनंत ब्रम्हाण्ड में जहाँ हमारे हाथ में कुछ भी व्यवस्था नहीं है वहाँ यह महावीर नाम का आदमी अपने आसपास एक घर की व्यवस्था करे, इस नास्तिकता में पड़ने का क्या अर्थ है ? महावीर कहते हैं, इस व्यवस्था में जब इतनी अव्यवस्था भी झेलनी पड़ सकती है तो इतनी सी अव्यवस्था और जोड़ देती है इतनी काजमिक अव्यवस्था में, इतनी ब्रह्माण्ड की असुरक्षा में। मैं बैंक बैलेंस भी रखकर क्या व्यवस्था कर पाऊंगा। तो महावीर कहते हैं, यह व्यर्थ का बोझ मैं छोड़ देता हूं। अब मैं छोड़ देता हूं जहाँ से श्वांस आती है, जहाँ से कल की सुबह आयेगी, जहाँ से आज का सूरज आया था और जहाँ से आज का चांद आया है और जहाँ से कल सुबह जड़ों को रस मिलेगा और जहाँ से कल वृक्षों में फूल खिलेंगे और जहाँ से पक्षी गीत गायेंगे, वहीं से अगर इस परम सत्ता की, अगर कोई आकांक्षा इस शरीर को भी जिन्दा रखने की है तो वह रख लेंगे और नहीं रखने की है तो महावीर की अपनी अब कोई इच्छा शेष नहीं रह गई है। यह महावीर की इस बात की घोषणा है सबको छोड़कर जाना कि अब मैं अपने लिए नहीं जी रहा हूं। अगर परमात्मा जिलाना चाहता है तो वह जाने। अब मैं अपनी तरफ से नहीं जी रहा हूं। इसलिए महावीर की जिंदगी में एक छोटा सा नियम था जो बड़ा अद्भुत है। शायद दुनिया के किसी संन्यासी ने वैसे नियम का उपयोग नहीं किया है। सच तो यह है कि महावीर जैसा संन्यासी खोजना बहुत मुश्किल है।

महावीर का एक नियम था कि सुबह भीख मांगने निकलते थे तो वे अपने मन में सुबह के ध्यान में सोच लेते थे आज इस शर्त पर भीख मिलेगी तो स्वीकार करूँगा नहीं तो नहीं करूँगा। अब भिखारी कभी शर्त नहीं लगाते। भिखारियों की कोई कंडीशंस हो सकती हैं। भिखारी बेशर्त मांगते हैं और महावीर शर्त लगाकर माँगते हैं। क्योंकि कोई भिखारी नहीं है और शर्त भी ऐसी है कि दूसरे आदमी की। दूसरे आदमी को बतायी भी नहीं गयी है कि वह इन्तजाम कर ले। शर्त सिर्फ उन्हीं को पता है। जैसे वह सुबह शर्त लेकर निकले अपने दिमाग में कि अगर आज एक स्त्री काले कपड़े पहने हुए एक आंख वाली मुझे भिक्षा देगी तो मैं लूंगा अन्यथा नहीं लूंगा। अब इस गांव का उन्हें कुछ पता नहीं। रात ही इस गांव में आकर वह ठहरे। अब एक आंख वाली गोरी स्त्री काले कपड़े पहने हुए उनको भिक्षा देगी तो वह स्वीकार कर लेंगे अन्यथा वह गांव में घूमकर वापस लौट आयेंगे। वह कहेंगे, परमात्मा की मर्जी नहीं थी। जाने दो। क्योंकि अपनी अब कोई मर्जी जीवन की नहीं है। न मरने की कोई मर्जी है, न जीने की कोई मर्जी है। अपनी तरफ से वह जो जिजीविषा है, वह जो लस्ट फार लाइफ है वह अब नहीं है। अब परमात्मा की मर्जी है तो रखे, मर्जी हो तो उठा ले। एक बार ऐसा हुआ कि महावीर महीनों तक गांव में जाते रहे और भिक्षा न मिल सकी। क्योंकि उन्होंने एक शर्त ले ली। अब वह शर्त तो बतायी नहीं जाती थी नहीं तो कोई इन्तजाम हो जाता। गांव बहुत से उपाय करता लेकिन वह शर्त पूरी न होती। अब बड़ी मुश्किल कि महावीर के मन में क्या है। महावीर ने एक शर्त ले ली कि एक राजकुमारी जो जंजीरों में बन्द हो, जिसका एक पैर मकान के भीतर और एक पैर मकान के बाहर हो, जिसकी आँखों में आँसू हों और ओंठ पर मुस्कराहट हो। अगर वह भिक्षा देगी तो ले लेंगे। तो फिर महिनों नहीं मिली। नहीं मिली तो रोज गांव से खाली वापस लौट आते। सारा गांव दुखी और परेशान है, सारा गांव रो रहा है, गांव भर में भोजन मुश्किल हो गया है। लेकिन हाथ पैर जोड़ते हैं और कहते हैं कि स्वीकार

करें। लेकिन महावीर कहते हैं, उसकी मर्जी। लेकिन वह भी हो गया। एक दिन यह भी हो गया। कारागृह में बन्द एक राजकुमारी ने भिक्षा दी। आँखों में आँसू थे उसके अपने कारागृह में होने के लिए, ओठों पर मुस्कराहाट थी क्योंकि महावीर ने उसकी भिक्षा स्वीकार कर ली थी। हंस रही थी, महावीर उसके द्वार पर रुक गये, आँख में आँसू थे, होंठ पर मुस्कराहट थी। एक पैर जंजीरों से बंधा हुआ पीछे था, एक बाहर निकाल पायी थी क्योंकि एक ही पैर खुला था। ले लो व लौट गये लेकिन इस भिक्षा के लिए परमात्मा कभी उनको जिम्मेवार नहीं ठहरा सकेगा। अगर कोई जिम्मेवार होगा तो परमात्मा ही होगा।

यह परम सत्ता में समर्पण है। यह संन्यास का, यह संन्यास की परम अंतिम अवस्था है जहां व्यक्ति एक श्वांस भी अपनी तरफ से नहीं लेता। इसलिये महावीर कह सकते हैं कि मेरे कर्मों का अब कोई फल मेरे लिये नहीं है और मेरे कर्मों का कोई परिणाम अब मुझसे नहीं बंधा है। अब मैं कुछ कर ही नहीं रहा हूं। अब जो हो रहा है, हो रहा है। करना मेरे हाथ में नहीं है। कर मैं नहीं रहा हूं। अब मेरी कोई इच्छा नहीं है। लेकिन महवीर का यह अपना व्यक्तित्व है और हमसे भूल हो जाती है जब हम दो व्यक्तियों की तुलना करने लगते हैं। अगर हम जनक और महावीर की तुलना करें तो कठिनाई हो जायेगी। जनक का अपना आनन्द है। महावीर कहते हैं, परमात्मा को रखना होगा तो रख लेगा, किसी भी हाल में। जनक कहते हैं, परमात्मा ने महल दिया है तो मैं छोड़ने वाला कौन हूं? जनक कहते हैं परमात्मा ने राज्य दिया तो मैं छोड़ने की झंझट में भी क्यों पड़ूं? कौन ठीक है, कौन गलत है, दोनों का अपना ढंग है परमात्मा को देखने का। दोनों ही ठीक हैं। हजार तरह के लोग हैं। जीसस अपने तरह के आदमी हैं, बुद्ध अपने तरह के, महावीर अपने तरह के, कृष्ण अपने तरह के। हमने जब भी उनकी तुलना की है तब भूल हो जाती है क्योंकि तुलना में हम एक तरफ किसी आदमी की तरफ झुक जाते हैं। जिस की तरफ हमारे व्यक्तित्व का टाइप झुकता है, और तब हम दूसरे को गलत देखने लगते हैं। नहीं नहीं, कोई कारण नहीं है, इस पृथ्वी पर लाख तरह के व्यक्तित्व खिल गये हैं। लाख तरह के व्यक्तियों के खिलने की संभावना है। तुलना की कोई भी जरूरत नहीं है लेकिन गहरे में अगर देखें तो बात एक ही है। जनक महल में हैं क्योंकि वह कह सकते हैं कि जब परमात्मा ने महल दिया तो मैं क्यों छोड़ूं? महावीर जंगल में हैं लेकिन बात एक ही है। वे कहते हैं अगर उसको रखना है तो जंगल में भी महल रख लेगा। मैं क्यों फिक्र करूँ। दोनों एक ही बात कहते हैं लेकिन दोनों के व्यक्तित्व के ढंग अलग हैं। वह एक बात इन दो व्यक्तियों में अलग अलग गीत बन जाती है। वह एक ही बात भी इन दोनों व्यक्तियों में अलग अलग स्वर ले लेती है। एक ही बात इन दोनों व्यक्तियों में अलग अलग अर्थ बन जाती है। लेकिन वह बात एक ही है। वह परमात्मा पर समर्पण की बात है। यह हमें ख्याल में आ जाय तो तुलना बन्द कर देनी चाहिए। यह हमारे ख्याल में आ जाय तो प्रत्येक को वह जैसा है वैसा ही उसकी पूर्णता में समझ लेने की कोशिश कर लेनी चाहिए। बिना कम्पेरीजन के। और तब एक दिन हम समझ पायेंगे कि हजार फूल हों लेकिन सौंदर्य एक है और हजार ढंग के दिये हों लेकिन ज्योति एक है। और हजार ढंग के सागर हों लेकिन सभी सागरों का पानी एक सा खारा है। जिस दिन यह दिखायी पड़ना शुरू होता है उस दिन व्यक्ति विदा हो जाते हैं और वह जो मौलिक आधारभूत सत्य है उसका दर्शन हो जाता है।

प्रश्न : महावीर ने तो धन की व्यर्थता प्रमाणित की अपरिग्रह से, लेकिन पीछे चलने वाले दरिद्रता के पोषक हुए, ऐसा क्यों?

उत्तर : अपरिग्रह की बात दरिद्रता का बचाव बन सकती है। अपरिग्रह की बात प्रगति का विरोध बन सकती है। अपरिग्रह की बात जीवन की संपन्नता की

खोज में बाधा बन सकती है। सभी बातें गलत ढंग से ले जाने पर विपरीत परिणाम लाती हैं। सभी बातें उल्टे ढग से पकड़े जाने पर जीवन को सदा लाभ नहीं, हानि पहुंचाती हैं और आदमी जैसा है उससे गलत ढंग से पकड़े जाने की सदा संभावना है। एक छोटी सी कहानी से मैं समझाने की कोशिश करूँगा।

एक गांव है और उस गांव में एक बहुत बड़ा धनपति है और जैसे कि धनपति होते हैं वैसा ही धनपति है कंजूस। एक पैसा उससे छूट नहीं पाता है। गांव में एक मन्दिर बन रहा है। गांव हजार बार उस धनपति के द्वार गया है और अब तो भिखारी भी नये गांव में आते हैं तो पुराने भिखारी उनसे कह देते हैं, उस दरवाजे पर मत जाना। कभी उस घर से किसी को कुछ नहीं मिला है। लेकिन गांव में एक नया मन्दिर बन रहा है। गांव के गरीब से गरीब आदमी ने भी कुछ न कुछ दिया है। तो गांव के लोगों ने सोचा कि एक फिहिरिस्त बना लें, गरीब से गरीब आदमी ने भी कुछ दिया है। किसी ने हजार दिया है, किसी ने दस हजार दिये हैं, किसी ने पाँच दिए हैं, किसी ने रुपया दिया है लेकिन ऐसा एक भी आदमी गांव में नहीं बचा जिसने कुछ भी न दिया हो। हम यह फिहिरिस्त लेकर चल रहे हैं और गांव के सौ पचास खास आदमी उस करोड़पति के द्वार पर गये हैं। सोचा उन्होंने आज तो हम कुछ लेकर ही लौटेंगे क्योंकि क्या वह प्रभावित न होगा इस बात से! न प्रभावित हो तो कम से कम संकोच भी तो भर जाता है आदमी में। जब वह फिहिरिस्त सुनाने लगे कि किसी ने दस हजार दिये हैं, जिसकी कुछ भी हैसियत नहीं है उसने दस हजार दिये हैं। जो बिल्कुल ही दीन हीन हैं उसने भी हजार दिये हैं, जो रोज ही रोटी कमाता है उसने भी पांच रुपये दिये हैं। जब वे फिहिरिस्त सुनाने लगे और अमीर की तरफ बीच बीच में देखते जाते कि क्या परिणाम हो रहा है। वह अमीर आदमी भी बहुत उत्सुक होता जाता और बड़ा प्रभावित दिखायी दिया है। तब उन लोगों ने सोचा कि लगता है काम बन जायेगा। फिर पूरी फिहिरिस्त सुनाने के बाद वह अमीर तो एकदम खड़ा हो गया। उसने कहा मैं बहुत प्रभावित हो गया हूं। तब उन्होंने सोचा आज हम निष्फल न लौटेंगे। तब उन्होंने कहा, कि आप भी कुछ दें जब आप प्रभावित हो गये हैं। उस आदमी ने कहा तुम मेरे प्रभाव का मतलब गलत समझे, मैं इसलिये प्रभावित हो गया हूं कि कल से मैं गांव में दान मांगना शुरू करने की योजना बनाऊँगा। जिस गांव में सब लोग देने को राजी हैं उसमें दान न मांगना बड़ी गल्ती है। मैं बहुत प्रभावित हो गया हूं।

आदमी ऐसे ही प्रभावित होता रहा है। महावीर महल छोड़कर सड़क पर आ गये। होना तो यह चाहिए था कि जिनके पास महल थे उन्हें पता चलना चाहिए था कि वह किस व्यर्थ दौड़ में लगे हुए हैं क्योंकि जिसके पास महल था वह छोड़कर सड़क पर खड़ा हो गया है। नहीं, यह नहीं हुआ। हुआ यह कि जो झोपड़ों में थे उन्होंने सोचा कि जब महल वाले ही छोड़कर आ रहे हैं तब हमें अपने झोपड़ों को महल बनाने की कोशिश क्यों करनी चाहिए और गरीब अगर अपनी गरीबी में राजी हो जाये तो कभी भी उस स्थिति को उपलब्ध नहीं हो पाता जो धन के अनुभव के बाद मिलती है। वह गरीब ही रह जाता है। महावीर को भिक्षा मांगते देखकर सम्राटों को शर्म आन चाहिए थी, सोचना चाहिए था कि जो आदमी सम्राट होकर कुछ न पा सका वह भिक्षा मांगकर पा रहा है। नहीं, सम्राटों ने यह नहीं सोचा। भिखारियों ने यह सोचा कि हम बड़े गौरववान हैं। क्योंकि देखो, महलों में नहीं मिला। अब भीख मांगने आये। हम तो इससे पहले से ही भीख मांग रहे हैं, हम पर परमात्मा की कुछ ज्यादा ही कृपा है। आदमी ऐसा सोचता है और इसलिये इस बात में सचाई है कि भारत की दीनता को बचाने में महावीर से प्रभावित लोगों का हाथ है। महावीर का नहीं। महावीर से प्रभावित लोगों का हाथ है। भारत की दीनता में, भारत की अवैज्ञानिकता में, भारत की अप्रगति में बुद्ध महावीर से प्रभावित लोगों का हाथ है। बुद्ध और महावीर का नहीं। लेकिन बड़ी कठिनाई है। महावीर

पर दोष कैसे थोपा जा सकता है । आग है घर में चूल्हा भी जला देती है और अंधेरे में रोशनी भी कर देती है और फिर किसी के मकान में आग लगानी हो तो भी काम में आ जाती है । जिसने आग को खोजा था उस अविष्कारक को कैसे दोष दिया जा सकता है । एटम बम है, जिन वैज्ञानिकों ने बनाया उसको हिरोशिमा के लिए दोषी ठहराया जा सकता है ? नहीं ठहराया जा सकता क्योंकि अणु की ऊर्जा से तो खेत में फसल भी आ सकती है हजार गुनी । अणु की ऊर्जा से सारी दुनिया के यंत्र चल सकते हैं, आदमी काम से मुक्त हो सकता है । अणु की ऊर्जा से दरिद्रता मिट सकती है। सदा के लिए, आदमी की उम्र लंबी हो सकती है । अणु की ऊर्जा से आदमी की संघातक बीमारियां समाप्त हो सकती हैं लेकिन आदमी ने यह कुछ भी नहीं किया । आदमी भूखों मर रहे हैं, खेत में फसल न बढ़ा, आदमी केंसर से मर रहे हैं, केंसर का इलाज अणु की ऊर्जा से न खोजा गया । असमय में बच्चे मर जाते हैं, उनके बचाने की कोई संभावना अणु की ऊर्जा से न खोजी गई । अणु गिराया गया हिरोशिमा पर कि लाख आदमी राख हो जाय । क्या किया जा सकता है ! कहावत अरब में है एक कि जब कोई नया आविष्कार होता है तो शैतान सबसे पहले उस पर कब्जा कर लेता है । महावीर का बड़ा आविष्कार होता है, शैतान ने सबसे पहले कब्जा कर लिया । आइंस्टीन का बड़ा आविष्कार है, शैतान ने सबसे पहले कब्जा कर लिया । दो ही बातें हैं, या तो ये आविष्कार न किये जायें शैतान के डर से दुनिया में अच्छी चीजें न बनायी जायें । गलत प्रभाव की वजह से दान न मांगा जाय, गलत प्रभाव की वजह से कोई अच्छा काम न हो क्योंकि गलत प्रभाव पड़ सकते हैं तो भी तो बुरा परिणाम होगा क्योंकि जो अच्छा न हो पाये तो भी तो बुरा शेष रह जायेगा । इसलिए खतरे मोल लेने पड़ते हैं । आदमी गलत लेता है, लेने दें । जो ठीक है उसे किये ही जाना होगा । आज नहीं कल आदमी अपनी गलती को अपने दुख और पीड़ा को समझेगा और समझेगा कि उसने जिससे स्वर्ग बन सकता था उससे उसने नर्क बना लिया है । महावीर गरीबी के समर्थक नहीं हैं, महावीर सिर्फ अमीरी की व्यर्थता के उद्घोषक हैं ।

दूसरी बात पूछी है साथ में । पूछा है साथ में कि अनुयायी तो कभी महावीर की ऊँचाई को न पा सके, क्राइस्ट की ऊँचाई को ईसाई नहीं पाते, बुद्ध की ऊँचाई को बुद्धिस्ट नहीं पाते । महावीर के अनुयायी महावीर की ऊँचाई को नहीं पाते । नहीं पाते, उसका कारण है । अनुयायी कभी ऊँचाई पा ही नहीं सकता है, क्योंकि जो आदमी दूसरे के पीछे चलता है वह अपनी आत्मा को गंवाने का काम करता है । दूसरे के पीछे चलने के लिए अपनी हत्या तो करनी ही पड़ती है । दूसरे का अनुशरण करने के लिए स्वयं के चित्त को तो काटना ही पड़ता है, दूसरे के वस्त्र पहनने को अपने शरीर को छोटा करना पड़ता है । दूसरे की आत्मा ओढ़ने के लिए अपनी आत्मा को दबाना ही पड़ता है । अनुयायी कभी ऊँचाई नहीं पा सकता जिसने अनुयायी होने का तय किया है उसने स्वीसाइडल निर्णय लिया है । आत्मघाती निर्णय लिया है । मैं नहीं कहता कि महावीर के अनुयायी बनें, मैं नहीं कहता कि जीसस के अनुयायी बनें । महावीर को समझ लें इतना काफी है, और छोड़ दें । जीसस को समझ लें इतना काफी है और छोड़ दें । बनें तो सदा ही आप आप ही बनें । महावीर के बनने का आपके लिए कोई उपाय नहीं है जीसस बनने का कोई उपाय नहीं है । इसका मतलब यह नहीं है कि जीसस जिस ऊँचाई पर पहुंचे बस आप न पहुंच सकेंगे । आप भी पहुंच सकेंगे लेकिन आप ही होकर पहुंच सकते हैं । जीसस की नकल करके नहीं पहुंच सकते । अनुशरण नकल है और ध्यान रहे कार्बन कापी जो आदमी बनने की कोशिश करता है वह मूल कापी की स्पष्टता नहीं पा सकेगा । और फिर हिन्दुस्तान कार्बन हो तब तो और भी मुश्किल है । फिर तो कुछ समझ में भी आ जाय तो भी मुश्किल है कि पीछे क्या है । और फिर सेकेण्ड कापी हो तब भी ठीक है । महावीर को मरे २५०० साल हो गये । २५०० साल में हजारों कापियों के बाद आप खड़े हैं । लाखों कापियां

गुजर चुकी हैं उस कार्बन पर। बहुत कापियां हो चुकी हैं उस कार्बन पर। अब कुछ भी समझ में नहीं आता। लेकिन समझे चले जा रहे हैं, अनुकरण किये चले जा रहे हैं।

अनुयायी कभी धार्मिक नहीं होता है। असल में अनुयायी यह कह रहा है कि मैं अपने होने की जिम्मेवारी छोड़ना चाहता हूं। मैं किसी के पीछे चलना चाहता हूं। मैं अन्धा होने के लिए तैयार हूं। मैं किसी का हाथ पकड़कर चलूंगा। मुझे कोई कहीं पहुंचा दे मैं अपने चलने की जिम्मेदारी से इन्कार करता हूं। जिस आदमी ने अपने कांधों से इन्कार किया और जिस आदमी ने अपने विवेक पर जिम्मेदारी लेने से इन्कार किया वह आदमी कभी भी विकसित नहीं हो सकता। अविकास के सारे उपकरण चुन लिये। लेकिन सदा हमें यही समझाया जाता रहा कि इसका अनुकरण करो, किस जैसे बनो। यह बड़ी खतरनाक शिक्षा है। दुनिया में कभी कोई किसी जैसा नहीं बन सकता है। आज तक बना नहीं, उदाहरण नहीं है। महावीर के पीछे बहुत लोग चले लेकिन कौन महावीर बन सका। ऐसा नहीं कि चलने वालों ने कुछ कम कोशिश की। यह दोष नहीं थोपा जा सकता। बड़ी कोशिश की। कई बार तो ऐसा लगता है कि महावीर को महावीर होने में कोशिश नहीं करनी पड़ती। वह स्पांटेनियस है। प्रत्येक को स्वयं होने में कभी बहुत कोशिश करनी पड़ती है, दूसरा होने में ही कोशिश करनी पड़ती है। एफर्ट जो है, कोशिश जो है वह दूसरा होने में ही करनी पड़ती है। महावीर का त्याग, महावीर की नग्नता, महावीर के लिए सहजता है। अब दूसरा आदमी नग्न होने की व्यवस्था से नग्न हो सकता है। लेकिन उसकी नग्नता सर्कस की नग्नता होगी। संन्यास की नग्नता नहीं हो सकती। वह सिर्फ उधार, बारोड, दूसरे पर थोपा हुआ होगा। वह ज्यादा से ज्यादा महावीर को एक्ट कर सकता है। महावीर नहीं हो सकता। जीसस या बुद्ध या कृष्ण या राम उनके पीछे चलने वाले लोग अभिनय कर रहे हैं। उन्होंने अथेंटिक, प्रामाणिक आत्मा को इन्कार कर दिया है। एक बात ध्यान रखने जैसी है, परमात्मा ने प्रत्येक को स्वयं के होने का हक दिया है और जो आदमी अपने इस हक को छोड़ता है वह परमात्मा की सबसे बड़ी देन को छोड़ता है। ऐसा आदमी नास्तिक है। ऐसा आदमी यह कह रहा है कि तुमने हम पर बहुत बड़ी जिम्मेवारी दे दी। हम इस योग्य न थे हमें तो किसी के पीछे चला दो। हम इन्जन नहीं हो सकते। हमतो सिर्फ डब्बे होने लायक हैं जो इन्जन के पीछे लगा रहे और उसकी सीटिंग इधर से उधर होती रहे। तो वह अपनी जिन्दगी गुजार लेगा। नहीं, प्रत्येक आदमी स्वयं होने को पैदा हुआ है बेजोड़, यूनिक। उस जैसा न कोई आदमी इस पृथ्वी पर पहले हुआ होगा। परमात्मा कोई मिडयाकर, क्रियेटर नहीं है। कोई बहुत मध्यवर्गी साधारण कोटि का सृष्टा नहीं है कि उसको एक ही आदमी को फिर दोबारा पैदा करे। वह रोज नये आदमी को पैदा कर लेता है।

मैंने सुनी है एक कहानी। मैंने सुना है पिकासो का एक चित्र किसी आदमी ने खरीदा। कोई दस लाख रुपये में। पिकासो की पत्नी से उसने पूछा कि यह चित्र प्रामाणिक तो है न, अथेंटिक तो है न, पिकासो का ही है न पिकासो की पत्नी ने कहा, बिल्कुल निश्चित आप खरीद लें। क्योंकि ये चित्र मेरे सामने ही पिकासो ने बनाया है। चित्र खरीद लिया गया। वह आदमी पिकासो को यह खबर देने गया। उसने कहा कि मैंने दस लाख रुपये में आपका चित्र खरीदा है। वह चित्र भी ले गया। पिकासो ने चित्र को देखा और कहा कि नहीं यह असली नहीं है। अथेंटिक नहीं है। वह आदमी तो होश खो दिया। दस लाख रुपये गवाये और खुद पिकासो ने कह दिया कि नहीं, यह प्रामाणिक नहीं है। उस आदमी ने कहा आप कैसी बात कर रहे हैं। आपकी पत्नी ने गवाही दी है कि यह चित्र उसके सामने बना है। उसकी पत्नी मौजूद थी। उसने कहा आप कैसी बात कर रहे हैं। भूल गये हैं क्या। यह चित्र आपने बनाया है। मैं मौजूद थी, पिकासो ने

कहा मैंने बनाया जरूर लेकिन यह अथेंटिक नहीं है । तो और मुश्किल हो गई । अगर पिकासो ने ही बनाया तो फिर प्रमाणिक क्यों नहीं है । तब तो उस खरीददार ने कहा, आप मजाक तो नहीं कर रहे हैं । पिकासो ने कहा मजाक नहीं कर रहा हूं यह चित्र बनाया तो मैंने ही है । लेकिन यह चित्र मैं पहले एक दफा और बना चुका हूं । अब यह सिर्फ उसकी कापी है और यह कापी कोई दूसरा कराये तो भी प्रमाणिक नहीं है । मैं खुद भी करूं तो भी प्रामाणिक नहीं है । यह कापी है, ओरिजनल नहीं है । यह ख्याल मैं एक दफा प्रगट कर चुका हूं । लेकिन परमात्मा जो ख्याल एक दफे प्रगट कर चुका दोबारा करता ही नहीं । बुद्ध एक दफे पैदा कर दिये बात खत्म हो गई । महावीर एक दफे पैदा किये बात खत्म हो गई । इस पृथ्वी पर खोजने से एक कंकड़ भी आप दूसरे कंकड़ जैसा आप न खोज पायेंगे । आदमी तो बहुत बड़ी बात है । एक झाड़ पर एक पत्ता तोड़ लें तो उसी झाड़ पर दूसरा पत्ता वैसा न खोज पायेंगे, आदमी तो बहुत बड़ी बात है । आदमी तो बहुत ही जटिल चेतना का विकास है । यहां प्रत्येक आदमी एक शिखर है और किसी आदमी को यह हक नहीं कि वह किसी का अनुशरण करे । इसका यह मतलब नहीं है कि वह महावीर को समझे न । सच तो यह है कि अनुयायी नहीं समझता कभी भी । अनुयायी को समझने की जरूरत ही नहीं होती । असल में जिसको पीछा करना है वह समझने से बचने के लिए पीछा करता है । समझने की झंझट में वह नहीं पड़ता । समझना तो उसे पड़ेगा जिसे किसी का पीछा नहीं करना है लेकिन दूसरों ने भी अनुभव लिये हैं । दूसरों की जिन्दगी में भी संगीत प्रगटा है, दूसरों ने छुआ है जीवन का तार और दूसरों ने भी जलाये हैं दिये ज्ञान के, प्रज्ञा के और दूसरों की जिन्दगी में भी सुवास उठी है आत्मा की और दूसरों की जिन्दगी में भी नृत्य घटा है परमात्मा का । उनको वह समझने जा रहा इसलिए नहीं कि उनका अनुशरण करेगा बल्कि इसलिए कि शायद वे सब विकसित फूलों को देखकर उसकी कली भी प्यास से भर जाय और फूल बनने को आतुर हो जाय । शायद इसलिए कि सुनती हुई दूसरी वीणाओं को उसकी वीणा के तार भी झनझना उठे और उसकी वीणा भी गीत गाने को आतुर हो उठे । शायद इसलिए कि दूसरे के पैरों में घूंघर की आवाज उसके पैरों के सोये घूंघर को भी चुनौती बन जाय, वह भी नाच सके । लेकिन किसी के अनुशरण के लिए समझने की जरूरत नहीं है अनुशरण के लिए अंधा होना बड़ी से बड़ी योग्यता, क्वालिफिकेशन है । समझ बड़ी और बात है, अपने लिये जिन्दगी को अगर सचाई में ले जाना हो, स्वयं को अगर विकसित करना हो तो भूलकर किसी के अनुयायी मत बनना और न भूलकर किसी को अनुयायी बनाना । दोनों ही खतरनाक बातें हैं । समझना दूसरों को और जिन्दगी में कभी आपका भी फूल खिल जाय तो रख देना बाजार के बीच सड़क पर कि दूसरे उसे देख लें । शायद उनकी कली को भी चुनौती मिल जाय । लेकिन उनकी कली जब खिलेगी तो वह फूल उनके जैसा होगा आप जैसा नहीं होगा और उनकी वीणा जब बजेगी तो संगीत उन जैसा होगा, आप जैसा नहीं होगा । प्रत्येक व्यक्ति को परमात्मा के द्वार पर अपने ही प्राणों का नैवेद्य लेकर पहुंचना होता है और प्रत्येक व्यक्ति को परमात्मा के द्वार पर अपनी ही आत्मा को लेकर पहुंचना होता है । उधार आत्मायें लेकर परमात्मा के द्वार पर कभी कोई प्रविष्ट हुआ हो, ऐसी खबर सदियों में कभी भी नहीं सुनी गई है वहां से पूछा हो जायेगा कि प्रामाणिक हो हैं ? अथेंटिक हैं ? अपने को हो लेकर आये हो ? किसी और का चेहरा लगाकर तो नहीं आ गये ? उस दरवाजे पर धोखा न दिया जा सकता है । हो सकता है इस पृथ्वी पर धोखा भी हो जाय, हो सकता है इस पृथ्वी पर नगा खड़ा हुआ कोई आदमी ठीक महावीर जैसा दिखाई पड़ने लगे, हो सकता है इस पृथ्वी पर कोई पीत वस्त्र पहने हुए ठीक बुद्ध जैसा दिखाई पड़ने लगे हो सकता है इस पृथ्वी पर धोखा हो जाय लेकिन परमात्मा के सामने सब वस्त्र गिर जायेंगे और परमात्मा के सामने सब खोलें उखड़ जायेंगी और परमात्मा के

सामने सब नग्न खड़ा हो जायगा और परमात्मा के दर्पण में जब अपनी पूरी नग्नता दिखाई पड़ेगी तो वहां सिवाय उसके कोई भी नहीं मिलेगा जो आपने ओढ़ा। वह नहीं मिलेगा जो आपने संवारा है, वह नहीं मिलेगा जो आपने अभ्यास किया, वहां वही दर्शेगा जो आप हैं। उस दिन बड़ा दुख होगा, बड़ी पीड़ा होगी कि कितने जन्म व्यर्थ ही नकल में गँवा दिये, नाटक में गँवा दिये। जिन्दगी दूसरे का अनुशरण नहीं, जिन्दगी स्वयं का उद्‌घाटन है। जिन्दगी दूसरे जैसे होने की प्रक्रिया नहीं स्वयं जैसे होने का आयोजन है और जो इस स्वयं होने की चुनौती को स्वीकार करता है वह महावीर का अनुयायी नहीं बनेगा लेकिन वहीं पहुंच सकता है, उसी ऊँचाई पर जहाँ महावीर पहुंचे हैं। पहुंच सकता है वहीं जहां जीसस पहुंचे हैं, पहुंच सकता है वहीं जहाँ बुद्ध की समाधि उन्हें ले गई है उसी निर्वाण में, उसी मोक्ष में, उसी स्वर्ग में उसी प्रभु के राज्य में प्रत्येक का प्रवेश हो सकता है लेकिन फिर से दोहराता हूं अंतिम बात। परमात्मा की वेदी पर अपने ही प्राणों के खिले फूल का नैवेद्य चढ़ाना पड़ता है, इसके अतिरिक्त कोई उपाय नहीं।

●●

--तथाता को सादर समर्पित--

-अहोभाव-

(१) रजनीश ने मुझे झकझोर जगायी
लूटे सारे सपने मेरी निंदिया उड़ायी,
प्रभु-मिलन की प्यासी के अहम् में आग लगायी।

सदा अनुग्रहीत
जयति के प्रणाम

नई ज्योतियां ! दिव्य वाणी ! जीवन संगीत से आलोकित !

नई साज सज्जा में

भगवान श्री रजनीश के विचारों की आध्यात्मिक त्रमासिक संकलन पत्रिका

ज्योति शिखा

संपादक—श्री महीपाल **मूल्य ५) वार्षिक**

[आप भी अपना वार्षिक शुल्क भेजकर इन कृतियों को प्राप्त कीजिये या आप चाहें तो उपहार में भेंट करें]

संपर्क : जीवन जागृति केन्द्र, रूम नं० ५३, एम्पायर बिल्डिंग,
डा० डी० एन० रोड, बम्बई–१

Phone : 264530

भक्ति-मार्ग का भ्रम

(भगवान श्री द्वारा राजकोट में दिया गया तीसरा प्रवचन)

संकलन : **मा योग समाधि (राजकोट)**

मेरे प्रिय आत्मन्,

मनुष्य के मन की बड़ी शक्ति है—भाव । लेकिन शक्ति बाहर जाने के लिए उपयोगी है, भीतर जाने के लिए बाधा है । भाव के बड़े उपयोग है लेकिन बड़े दुरुपयोग भी हैं । गहरे अर्थों में भाव का मूल्य होता है—स्वप्न देखने की क्षमता । वह भावना है जो हमारे भीतर स्वप्न निर्माण की प्रक्रिया है । स्वप्न देखने के उपयोग हैं । स्वप्न देखने का सबसे बड़ा उपयोग तो ये है कि स्वप्न हमारी नींद को सुविधापूर्ण बनाता है, बाधा नहीं डालता । इसे थोड़ा समझना उपयोगी है ।

साधारणतः हम सोचते हैं कि रात स्वप्न आता है तो उससे नींद में बाधा पड़ती है ये बात गलत है । स्वप्न से नींद में बाधा नहीं पड़ती । स्वप्न नींद को चलाने का ढंग है । अगर स्वप्न न हो तो नींद में बहुत जल्दी बाधा पड़ सकती है । जैसे आप भूखे सो गये हैं तो भूख बार-बार नींद तोड़ने की कोशिश करती है कि उठो, भूख लगी है । स्वप्न झूठे भोजन का इन्तजाम करा सकता है, स्वप्न कहता है, भोजन कर लो, उठने की क्या जरूरत है ? स्वप्न भोजन का इन्तजाम करा देता है । आप स्वप्न में भोजन करने लगते है और नींद अपने रास्ते पर चलती रहती है । आपको प्यास लगी है और अगर स्वप्न न हो तो नींद टूट जाय, लेकिन स्वप्न इन्तजाम करता है कि ये सरिता बहती है, मन भर के पानी पी लो । आपने एलार्म घड़ी लगा रखी है और चार बजे सुबह उठना है, अब वह एलार्म घड़ी नींद को तोड़ देगी । स्वप्न एलार्म की घड़ी नहीं सुनता, सुनता है कि मंदिर में घंटियां बज रही हैं, पूजा हो रही है । स्वप्न नींद को बचाने की तरकीब है, Safety Measures है । नींद टूट न जाय इसका इन्तजाम है । साधारणतः बचाता है नींद को स्वप्न । एक और बड़ी नींद है जिसको आध्यात्मिक नींद कहें, जिसमें हम चौबीस सोये घंटे हुए हैं । उसको बचाने के लिए भी बहुत सपनों की जरूरत है । भविष्य का स्वप्न हम इसलिए देखते हैं । आज दुःख है तो मैं कल के सपने देखता रहता हूं कि कल सब ठीक हो जायेगा; आज नौकर हूं तो कल मालिक हो जाऊँगा । थोड़ी देर की बात है, थोड़ी देर प्रतीक्षा की बात है । मैंने सुना है एक फकीर मर गया था और जब वह भगवान के सामने पहुंचा तो उसने भगवान से पूछा कि मैं बहुत हैरान हूं कि लोग जिंदा क्यों हैं ? उनके जिंदा रहने का कारण क्या है ? क्योंकि लोग इतने दुःखी हैं, मर क्यों नहीं जाते ? तब भगवान ने कहा, आशा के कारण । आज दुःख है तो कल सब ठीक हो जायेगा । जिंदगी में एक गहरी नींद भी है । जो हम रोज सोते हैं, वह तो बहुत साधारण नींद है । शरीर की जरूरत है । एक और गहरी नींद है, जिसमें हम जन्म से ही सोये रहते हैं और बहुत कम सौभाग्यशाली हैं जो मृत्यु के पहले उस नींद से जागते हैं । उस नींद को चलाने में भी सपने बड़े महत्वपूर्ण हैं । वह आशा बंधाये रखते हैं ।

एक बार ऐसा हुआ कि इजिप्त के एक मानस्ट्री में, एक आश्रम में—फकीरों के आश्रम में, एक आदमी

मर गया, एक फकीर मर गया। उस आश्रम में नियम था कि आश्रम के नीचे ही कई मील की खंदक खोद रखी थी जिसमें मुर्दों को नीचे डाल देते थे। फकीर मर गया था। चट्टान खुल गई फिर फकीर को मरघट में नीचे डाल दिया गया। चट्टान बन्द कर दी गई, लेकिन भूल हो गई। वह फकीर मरा न था, सिर्फ बेहोश था। चट्टान बन्द हो गई और फकीर होश में आ गया। ऐसी भूल बहुत बार हो जाती है। जिंदा आदमियों को हम बहुत बार मरे हुये समझ लेते हैं और बहुत बार मरे हुये आदमी को हम जिंदा समझ लेते हैं। हम सब मरे हुये आदमी हैं और अपने को जिंदा समझते हैं। अभी सुबह ही मैं कह रहा था कि हम मरते कभी और दफनाये कभी जाते हैं। मर तो जाता है आदमी बहुत जल्दी, कोई बीस साल में कोई पन्द्रह साल में, कोई दस साल में, कोई पांच साल में; दफनाया जाता है सत्तर साल में, पचहत्तर साल में, अस्सी साल में। बाकी का जो अंतराल है—बीच का, मरने का और दफनाये जाने का, उसमें हम मरे हुये जीते हैं। तो कुछ आश्चर्यजनक नहीं है कि मरे हुये लोगों को हम जिंदा समझते हैं, और जिंदा आदमी को मरा हुआ समझ लिया। वह आदमी होश में आ गया, उसकी मुसीबत हम समझें। वहां सिवाय लाशों के और कोई भी न था। अंधेरा, कीड़े मकोड़े थे। जो लाशों में पलते थे ऐसे छोटे कीड़े मकोड़े पैदा हो गये थे। बदबू थी दुर्गन्ध थी। उस आदमी ने आत्महत्या कर ली होगी? नहीं की। आशा ने उसे जिलाये रखा। उसने सोचा हो सकता है कल कोई मर जाये। और तभी चट्टाने खुलती थीं जब कोई मर जाये। वह बहुत चिल्लाया उसे मालूम था कि चट्टान के बाहर आवाज नहीं जायेगी लेकिन फिर भी चिल्लाया। आशा सब कुछ करवा देती है। शायद कोई सुन ले। जानता था कि कोई नहीं सुनेगा। चट्टान आश्रम से दूर थी और चट्टान सख्ती से बन्द हो जाती थी। कई बार उसने चट्टान बन्द की थी। जब कोई आदमी मर जाता तो नीचे जाकर दफना कर बन्द कर देते थे। जानता था कि कोई नहीं सुनेगा लेकिन आशा ने कहा चिल्ला लो, शायद कोई सुन ले, कोई निकलता हो, कोई गुजरता हो, कोई पास आया हो। नहीं, किसी ने नहीं सुना लेकिन तब भी आशा ने उसे जिंदा रखा कि हो सकता है कल कोई मर जाये, सांझ को कोई मर जाये, परसों कोई मर जाये। वह आदमी सात साल तक वहां जिंदा रहा। कैसे जिंदा रहा होगा? पहले एक दो दिन तो उसने भूख में गुजार दिये, लेकिन भूखा आदमी कब तक रह सकता था? फकीर था—कभी मांस नहीं खाया और कभी सोचा भी नहीं था कि कभी मांस खा लूंगा और वह भी मरे हुये मुर्दों का मांस खा लूंगा। ये तो कभी सोचा नहीं था। असल में सुविधा में कभी पता नहीं चलता कि हम क्या कर सकते हैं? वह तो असुविधा में पता चलता है। कब उसने मांस खाना शुरु कर दिया सड़ी हुई लाशों का, ये उसको पता भी नहीं था। उसने कीड़े मकोड़े पकड़कर खाने शुरू कर दिये क्योंकि जिंदा रहना जरूरी था। मरघट की दीवारों से नालियों का पानी रिस रिसकर भीतर आता था, वही वह चाट चाटकर पीने लगा क्योंकि जिंदा रहना जरूरी था। दो चार दिन की ही बात तो बात है। कभी न कभी तो कोई मरेगा मरघट खुलेगा और मैं बाहर निकल जाऊँगा। और वह फकीर जिसने सबके लिए प्रार्थना की थी—'भगवान सबको लम्बी उम्र दे,' वह फकीर अब भी प्रार्थना करता था लेकिन वह यही कहता है कि आश्रम में कोई एक आदमी मर जाय, नहीं तो यह कब्र कैसे खुलेगी? हे भगवान, किसी तरह एक आदमी को मार। सात साल बहुत लम्बा वक्त था उस अंधेरे में, उस मरघट में। सात साल बाद कोई मरा, वह चट्टान खुली। वह आदमी बाहर आ गया। लोग तो भूल ही चुके थे। लोग तो पहले पहचान नहीं सके तो बाहर खड़े समझे कि कोई भूत-प्रेत है। कौन निकला इस मरघट से? इस आदमी के बाल बड़े हो गये थे। उसकी आंख की पलकें इतनी बड़ी हो गई थीं कि आंख नहीं खुलती थी और आश्चर्य यह कि अपने साथ वह आदमी सामान लेकर बाहर निकला। ईजिप्त में रिवाज है कि मुर्दों को नये कपड़े भी पहना देते हैं। उसने सब मुर्दों के पैसे, सब मुर्दों के कपड़े इकट्ठे कर

लिए। इस आशा में कि कभी बाहर निकलूंगा तो काम पड़ जायगा। और जब उसने कहा, भागो मत मैं वही आदमी हूं जिसे तुम सात साल पहले दफना गये थे और डरो मत मैं मर नहीं गया था, मैं जिंदा था। उन्होंने कहा कि तुम मर नहीं गये थे, तुम जिंदा थे ये इतना आश्चर्य नहीं। सात साल तुम इस मरघट में जिंदा कैसे रहे? उस आदमी ने कहा आशा के सहारे। सोचा कल, सोचा कल और दिन गुजरते गये, और जो गुजर गया वह मैं भूल गया और कल की आशा फिर बंधी रही कि कल और देखो। मेरी आशा सफल हो गई। आखिर मरघट खुला और बाहर आ गया। **जिन्दगी भर हम सपने देखते रहते हैं—कल के। और कल का सपना हमें आज जिंदा रहने में सहयोगी हो जाता है। और कल का सपना आज की नींद नहीं टूटने देता। आज के दुःख को हम झेल लेते हैं और सोये रहते हैं।**

भाव की शक्ति का, कल्पना की शक्ति का, स्वप्न की शक्ति का उपयोग है, लेकिन आध्यात्मिक उपयोग नहीं है। अत्यंत गैर-आध्यात्मिक उपयोग है। इस शक्ति का कुछ लोग उपयोग करते हैं। इसी शक्ति का उपयोग करते हैं, वे इसे भक्ति कहते हैं। वे कहते हैं वो अपनी कल्पना के ही भगवान में जिये—हम भगवान की इतनी कल्पना करेंगे, इतना भाव करेंगे तो वह कैसे न आयेगा? वह आ जाता है। लेकिन वह असली भगवान नहीं होता वह हमारी कल्पना का भगवान होता है। कल्पना प्रगाढ़ हो तो हम अपने भगवान निर्मित कर सकते हैं और कल्पना की इतनी शक्ति है कि जितना वस्तुतः आदमी सामने खड़ा हो वह आदमी भी फीका मालूम पड़े और कल्पना का आदमी ज्यादा सच्चा मालूम पड़े। रोज ही हम जिंदगी में ऐसा करते हैं।

एक व्यक्ति किसी स्त्री के प्रति मोहित हो गया। सारा गांव कहता है कि पागल हो गया। वह स्त्री साधारण है लेकिन उस आदमी को दिखाई नहीं पड़ता। उसे कुछ और ही दिखाई पड़ता है। उसने अपनी कल्पना की स्त्री को उस स्त्री के ऊपर ओढ़ा दिया है। वह जो स्त्री गांव वाले लोग पहचानते हैं वह खूंटी का काम कर रही है। वह असली स्त्री नहीं है। असली स्त्री तो उसके दिमाग की है जिसने उस खूंटी पर ओढ़ा दी। मजनूं को बुलाया उसके गांव के राजा ने और उसने कहा कि तू पागल हो गया है। क्योंकि जान कर आपको हैरानी होगी कि लैला एक बदशक्ल औरत थी। उस राजा ने कहा तू पागल हो गया एक बदसूरत औरत के लिये? उससे बहुत सुन्दर लड़कियां हम तुझे दे सकते हैं छोड़ उसकी बात। उसने गांव की दस-बारह सुन्दर लड़कियां बुलायी थीं और मजनूं से कहा—देख, इन लड़कियों को देख। उस मजनूं ने देखा, उसने कहा—मुझे लैला के सिवा और कोई दिखाई नहीं पड़ती। उस राजा ने कहा तू पागल तो नहीं हो गया है? मजनूं ने कहा, हो सकता है लेकिन अभी तो मुझे आप पागल मालूम पड़ते हैं, जो लैला को कह रहे हैं कि वह बदशक्ल है। लैला को देखा है आपने? उस राजा ने कहा, पागल! भली-भांति देखा है। मेरे दरवाजे से रोज निकलती है। सारे गांव ने देखा है। सारा गांव हँस रहा है। सारा गांव कह रहा है कि मजनूं पागल हो गया है—एक साधारण सी औरत के लिये। उसे बहुत अच्छी स्त्री मिल सकती है। छोड़ तू उसकी फिक्र! मजनूं ने कहा मेरी आँख से आपने लैला को नहीं देखा। आप लैला को नहीं जानते। उसने कहा लैला को जानना हो तो मजनूं की आँख चाहिये, मेरी आँख सिर्फ देख सकती है।

असल बात ये है कि लैला जो वह मजनूं का Creation है, वह मजनूं का सृजन है। उसने अपनी कल्पना की स्त्री को लैला के ऊपर थोप दिया। इसलिये प्रेयसी जितनी सुन्दर पत्नी नहीं दिखाई पड़ती। प्रेयसी ही पत्नी हो जाय तो भी दिखाई नहीं पड़ती क्योंकि पत्नी होने से वो जो कल्पना की स्त्री थी वो धीरे-धीरे खूंटी से उतरती चली जाती है। फिर खूंटी ही रह जाती है। और तब पता चलता है कोई बड़ी भूल हो गयी, ये तो बड़ी गलती हो गई। वह प्रेमी सुखी रहते हैं जिनको उनकी प्रेयसी कभी नहीं मिलती क्योंकि उनकी कल्पना सदा जागी रहती है। लेकिन जिनको प्रेयसी मिल जाती है उनकी कल्पना टूट जाती है।

मैंने सुना है एक पागलखाने में एक मनोवैज्ञानिक गया था—पागलों का अध्ययन करने। पागलखाने का जो प्रधान था उसने एक पागल को दिखाते वक्त कहा, देखते हो इस आदमी को सीकचे में बन्द ? ये एक यूनिवर्सिटी का प्रोफेसर था। यूनिवर्सिटी के प्रोफेसर को सदा सावधान रहना चाहिये, वह कभी भी पागल हो सकता है। यूनिवर्सिटी पागलखाने की तैयारी है। वहां से खतरा सदा है। On the verge, वहां बिल्कुल किनारे पर खड़े हैं लोग। जरा सा धक्का लगे तो चले जायें। ये एक विश्वविद्यालय का अध्यापक है, ये पागल हो गया है। उस अध्ययन करने वाले आदमी ने पूछा इसके पागल होने का कारण ? उसने कहा देखिये वह हाथ में जो तस्वीर लिये हुये है, वह औरत उसके पागल होने का कारण है। इस औरत को यह प्रेम करता था और नहीं पा सका और पागल हो गया। फिर वे आगे बढ़े। दूसरे सींकचों में बन्द एक दूसरे आदमी को बताते हुये जेल के प्रधान ने कहा देखते हैं इस आदमी को ? ये भी पागल हो गया, उसका ही मित्र है। इसके पागल होने का क्या कारण है ? उसने कहा वह जो फोटो दिखाई थी उस पागल के पास, ये भी उस औरत को प्रेम करता था। वो औरत इसको मिल गई। उसका विवाह हो गया, उसकी वजह से ये पागल हो गया। एक आदमी न मिलने से पागल हो गया, एक आदमी मिलने से पागल हो गया। फिर भी उसने कहा कि वह जो न मिलने से पागल हुआ वह बड़ा सुखी है क्योंकि अभी वह सोचता है कभी न कभी मिलना होगा और ये जो मिलने से पागल हो गया वह बड़ा दु:खी है क्योंकि अब इसको कोई आशा नहीं है।

पुरुष स्त्रियों पर कल्पनायें थोप रहे हैं, स्त्रियाँ पुरुषों पर कल्पनायें थोप रही हैं। बाप अपने बेटों पर कल्पनायें थोप रहे हैं, बेटे अपने बाप पर कल्पनायें थोप रहे हैं। इसलिये सब पीछे परेशान हो जाते हैं। क्योंकि जब असली आदमी प्रगट होता है तो लगता है ये कैसा बेटा ? इसको मैंने पाल-पोसकर बड़ा किया ? जिसको पाल पोस कर बड़ा किया था वह आपकी Imagination थी, वह आपकी कल्पना थी। वह असली आदमी नहीं था। जो अब सामने प्रगट हुआ यही असली आदमी है। मां कहती है मैंने तुझे नौ महीने पेट में रखा। जिसको उसने पेट में रखा था वह कभी पैदा नहीं होगा, वह उसकी कल्पना थी। जो पैदा होता है वह कोई और है। और जब वह पैदा होता है तब भी माँ कल्पना थोपती जाती है। अभी छोटा बच्चा है वह रोक भी नहीं सकता कि कल्पना मत थोपो। मां थोपती चली जाती है, नेपोलियन बनोगे, विवेकानंद बनोगे, कृष्ण बनोगे, न मालूम कल्पना में क्या-क्या बना लेती है। जब वह बड़ा होकर खुद बनता है तब सब कल्पनायें टूट जाती हैं। खूंटी सामने आ जाती है। मां बहुत दु:खी हो जाती है। इस बेटे को तो जन्म न दिया होता तो अच्छा होता ! ये बेटा कहाँ से आ गया ?

हम चौबीस घंटे कल्पनाओं में जी रहे हैं। इन्हीं कल्पनाओं के आधार पर कुछ लोग भगवान को भी पाना चाहते हैं। कुछ ने पा भी लिया। लेकिन वह भगवान हमारी कल्पनाओं का भगवान है। फिर व्यवस्थित रूप से अगर कोई कल्पना करे तो कोई भी कल्पना साकार हो सकती है। टॉल्स्टॉय के संबंध में मैंने सुना है कि वह एक बार सीढ़ियों पर चढ़ रहा था—एक लाइब्रेरी में। संकरी सीढ़ियाँ थी और उसके साथ एक औरत चल रही थी। असली औरत न थी। कवियों के साथ असली औरत अक्सर नहीं होती ! उनके साथ तो उनकी कल्पना की औरत थी। टॉल्स्टॉय के साथ एक औरत चल रही थी जो उसके किसी उपन्यास की पात्र थी। वह उपन्यास लिख रहा था उसमें वह एक पात्र थी। वह उसके साथ चल रही थी। वह उससे बातचीत करता हुआ सीढ़ियां चढ़ रहा था। उस स्त्री का टॉल्स्टॉय को ही पता था और किसी को पता नहीं था। रास्ता संकरा था। ऊपर से एक आदमी उतर रहा था। वहाँ सिर्फ दो की ही जगह थी। और वह तीसरी औरत, बीच में जो थी, कहीं उसको धक्का न लग जाय। १९१७ के पहिले की बात है। अब रूस में कोई स्त्री के धक्के से नहीं डरता है, न चिन्ता करता है।

कहीं उसको धक्का न लग जाय। इसलिये टॉल्स्टॉय सरका और सीढ़ियों से नीचे गिर पड़ा। वह दूसरे आदमी ने नीचे आकर टॉल्स्टॉय को कहा कि आप क्यों सरके ? हम दो के लिए काफी जगह थी। टॉल्स्टॉय ने कहा, दो होते तो मैं भी क्यों सरकता ? ये तो घुटना टूटने पर पता चला कि दो ही थे। मैं तीन का सोच रहा था। एक औरत से बातें कर रहा था। उसने कहा कौन औरत ? कोई औरत दिखाई नहीं पड़ती। टॉल्स्टॉय ने कहा अब तो मुझे भी दिखाई नहीं पड़ती लेकिन इसके लिए पैर टूट जाना जरूरी था। पैर टूटा तब पता चला कि गलती हो गई। टॉल्स्टॉय अगर भगवान का दर्शन करना चाहे तो उसको कोई कठिनाई नहीं। ये टॉलस्टॉय के लिए बिल्कुल सरल है क्योंकि वह जो फेक्ल्टी, वह जो दिमाग की व्यवस्था है, वह जो स्वप्न देखने की व्यवस्था है ये उसका ही खेल है। हम इतना तीव्र स्वप्न देख सकते है कि जो मौजूद नहीं है वह हमारे पास मौजूद मालूम होने लगेंगे। हम उससे बात करने लगेंगे। उसके साथ जीने लगेंगे।

यह जो भाव की सामर्थ्य है; इस भाव की सामर्थ्य का नाम भक्ति है। यह भाव की सामर्थ्य यह स्वप्न देखने की क्षमता जब भगवान के प्रति लगा देते हैं तो भक्ति बन जाती है। भक्त चौबीस घंटे भगवान के साथ रहने लगते है। लेकिन ध्यान रहे, भाव सपना पैदा करता है और सपने सदा प्राइवेट होते हैं। सपने कभी पब्लिक नहीं होते। सपने का एक गुण है कि मैं और आप कितनी ही कोशिश करें तो भी एक ही सपना नहीं देख सकते। सपने की एक पहचान है। जिस चीज को पब्लिक में न किया जा सके, जिस चीज को दो आदमी एक साथ न देख सकें वह स्वप्न है। जिस चीज को दस आदमी एक साथ देख लें वह सत्य है। सपना जो है, मैं अपना ही देखूंगा आप अपना ही देखेंगे। सपने के संबंध मे समाजवाद कभी भी नहीं लाया जा सकता। कभी ऐसा नहीं हो सकता क्योंकि सपना मेरी निजी बात है, आपकी अपनी निजी बात है। और अगर मैं आपके सामने मौजूद भी हो जाऊँ तो वो मैं सपने में ही रहूंगा, मैं मौजूद नहीं हो सकूंगा। भगवान भी भक्तों के बिल्कुल निजी अनुभव हैं। एकदम प्राइवेट, वह भी पब्लिक नहीं।

हम अपने भगवान पैदा कर लेते हैं। हम अपने भगवान पैदा कर सकते हैं—पूरा जीवन गँवा सकते हैं। बहुत जीवन गँवा सकते हैं, स्वप्न के भगवान के साथ। वैसे स्वप्न के भगवान में एक सुविधा है कि आप जैसे हैं वैसे ही बने रहते हैं। भगवान आप में कुछ रद्दोबदल नहीं कर सकता क्योंकि आपके ही मन से लाया हुआ भगवान आपमें कोई फर्क नहीं ला सकता। असली भगवान की तरफ जाना हो तो आपको मिटना पड़ेगा और नकली भगवान की तरफ जाना हो तो भगवान को बनाना पड़ेगा। इस फर्क को समझ लें कि असली भगवान की तरफ जाना हो तो मुझे मिटना पड़ेगा। जैसा भी मैं हूं, मुझे मिटना पड़ेगा। तभी मैं असली भगवान को जान सकूंगा। और अगर नकली भगवान को जानना हो तो मैं जैसा हूं वैसा ही रहूंगा और भगवान को बनाना पड़ेगा। मैं उसको बना लूंगा। जैसा मुझे बनाना है वैसा मैं उन्हें बना लूंगा और मैं उन्हें देख लूंगा।

भक्ति भगवान का सृजन है, स्वप्न–सृजन, क्योंकि भगवान का सृजन हम कैसे कर सकते हैं ? भगवान तो वह है जिसने सर्जन किया है और भक्त का भगवान वह है जिसका भक्त ही सर्जन करता है। भगवान तो वह है जब हम नहीं थे तब भी था, जब हम नहीं होंगे तब भी होगा। भक्तों का भगवान वह है जो भक्त ने पैदा किया है, वह भक्त के साथ ही है और भक्त के विदा होते ही विदा हो जायेगा। भक्त का भगवान, भगवान नहीं है लेकिन सुखदायी हो सकता है, आनंददायी हो सकता है। सुखद सपने होते हैं और भगवान तो व्यवस्थित सपना है भक्त का। वह अपने सुख की कल्पना कर लेता है। वह जब चाहता है भगवान को तब उन्हें मुस्कराना पड़ता है। जब चाहता है, उन्हें नाचना पड़ेगा। जब चाहता है तब उसके ऊपर रोशनी डालनी पड़ती है। भगवान से

वह जो चाहता है करवा लेता है । और बड़ा प्यारा सपना है क्योंकि वहां खूँटी है ही नहीं सिर्फ सपना फैला हुआ पड़ा है । इसलिए कभी कठिनाई नहीं आती । सिर्फ सपना ही है और सपना अपने हाथ में है । भगवान को नचाना भी अपने हाथ में । तो भक्त भगवान को नचाये फिरता है । भक्त भागते आगे आगे, पीछे उनके भगवान उनको मनाने के लिए भी भागते हैं । वह अपने ही भगवान हैं अपनी ही कल्पना से पैदा हुये । भक्ति के कारण जितने लोग भगवान तक पहुंचने से रुके हैं उतने शायद ही किसी और बात से रुके हैं । लेकिन सुखद है । और आदमी भगवान को कम चाहता है सुख को ज्यादा चाहता है । भगवान की चाहना किसको है ?

एक मित्र ने पूछा है—लिखा है—हमें क्या मतलब भगवान से ? अगर हमें कल्पना का भगवान भी सुख दे सकता हो तो हम सुख चाहते हैं । हमें क्या मतलब भगवान से ? हम सुख चाहते हैं ।

ये सवाल महत्वपूर्ण है । ये महत्वपूर्ण इसलिए है कि ये सवाल किसी एक व्यक्ति का नहीं है । हजारों लोगों का यही सवाल है । सुख मिलना चाहिए । लेकिन ध्यान रहे, जो सुख हमने निर्मित किया है वह सुख झूठा है । वह आनंद नहीं है । आनंद वह है जो हमने निर्मित नहीं किया । इसलिए जो सुख निर्मित किया है वह खोता रहेगा । बार-बार खोता रहेगा ।

असल में निर्मित सपने को कितनी देर तक पकड़कर रखियेगा । सपना बीच-बीच में खोयेगा तब दुःख होगा । तो ये सपने का जो सुख है—शराब जैसा सुख है । एक आदमी शराब पी लेता है फिर होश आता है फिर वह कहता है, शराब दो क्योंकि वह दुःख में पड़ गया है । फिर और शराब पीता है फिर जब तक होश नहीं रहता तब तक ठीक । फिर होश आता है फिर कहता है और शराब दो । फिर होश आता है फिर कहता है और शराब दो । बेहोशी में उन्हें सुख मालूम पड़ता है । होश में उन्हें दुख मालूम पड़ता है । जो सपने में सुख पाता रहेगा वह बार-बार दुःख भी पाता रहेगा क्योंकि सपना टूटता रहेगा । सपना बार-बार टूटेगा, सपना स्थायी नहीं हो सकता । सपना तो टूटेगा तो बहुत दुख दे जायेगा । फिर सपने को बचाना पड़ेगा ।

सपने से सुख मिल सकता है लेकिन वे सुख वास्तविक नहीं हैं क्योंकि उनके पीछे निरंतर दुख प्रतीक्षा कर रहा है । नहीं, आनंद कुछ बात और है । आनंद हमारे द्वारा पैदा किया हुआ सुख नहीं है । आनंद वह स्थिति है जब सुख और दुख दोनों जा चुके हैं । जो हमने बनाया था वह सब जा चुका, दुख भी गया, सुख भी गया । हमने बनाये थे नर्क, वे भी गये । हमने बनाये थे स्वर्ग, वह भी गये । अब तो सिर्फ वही रह गया जो सदा है । वहां आनंद है । भक्त आनंद को उपलब्ध नहीं होता, सुख को उपलब्ध होता है । क्योंकि सपने सुख के बाहर नहीं ले जाते । और जो सपना सुख देता है उसके पीछे ही दुःख देने वाला सपना प्रतीक्षा करता है । वह कहता है, ठीक है, तुम चुक जाओ तब मैं आ जाऊँ । तो सब भक्त रोते हुए भी दिखाई पड़ेंगे । जब उन्हें भगवान की झलक मिल जायेगी, तब वह बड़े प्रसन्न होंगे और जब झलक नहीं मिलेगी, सपना नहीं बन सकेगा तब वे छाती पीटेंगे, रोयेंगे और विरह की अग्नि उनको सतायेगी । वह प्रेमियों की ही पुरानी कथा है । सिर्फ प्रेम का Object बदल गया । भगवान को उन्होंने प्रेम का विषय बना लिया लेकिन इससे कोई फर्क नहीं पड़ जाता है । जिन मित्र ने पूछा है कि हमें सुख की जरूरत है, अगर आपको सुख की ही जरूरत है तो दुःख से छुटकारा नहीं पा सकते ।

सुख और दुःख एक ही सिक्के के दो पहलू हैं । जो सुख की आकांक्षा करता है वह दुख में बार-बार गिरता रहेगा क्योंकि जब वह सुख के सिक्के को उठायेगा तो उसी सिक्के का दूसरा पहलू भी साथ चला आयेगा । थोड़ी देर में सिक्का बदलेगा और जो नीचे था वह ऊपर हो जायेगा । इसलिये हर सुख के पीछे दुःख छिपा है, हर दुःख के पीछे सुख छिपा है । ये वैसे ही है, हर

दिन के बाद रात है हर रात के बाद दिन है। ये ठीक ऐसा ही बदलता रहता है। जो सुख मांगता है वह दुःख से कभी मुक्त नहीं हो सकता-लेकिन आनंद कुछ बात और है। आनन्द-परमात्मा या सत्य को पाने का अनुभव है। फिर उसका कोई अंत नहीं है, फिर वह अनन्त है। फिर उसमें दूसरा कोई पहलू नहीं। फिर उसके पीछे कोई भी नहीं छिपा। आनन्द से विपरीत शब्द कभी सुना है ? ये बड़े आश्चर्य की बात है, आनन्द के विपरीत कोई भी शब्द नहीं है। आनन्द का दूसरा पहलू नहीं है। आनन्द को बदलने का उपाय नहीं है। आनन्द बस सिर्फ आनन्द है। उसके पीछे तो कुछ भी नहीं है। उसमें कितने ही गहरे जायें तो बस आनन्द ही आनन्द है। जैसे हम समुद्र के पानी को कहीं से भी चखें तो खारा है, खारा है, खारा है ! कहीं से भी चखें और कितने ही गहरे जायें और वह खारा है। ऐसे ही आनंद के सागर में हम किसी दिशा में जायें, कितने ही गहरे जायें तो वहां सिर्फ आनन्द है। आनन्द ही आनन्द है। लेकिन सुख की बात ऐसी नहीं है। सुख को हमने ठीक से चखा तो दुख मिल जायेगा। दुख को भी अगर ठीक से गहराई में खोजो तो सुख मिल जायेगा क्योंकि वह एक ही चीज के दो पहलू हैं। सुख की आकांक्षा में जो डूबा है वह निश्चित ही उसी भगवान को पैदा करेगा जो सपने के भगवान हैं क्योंकि सपने का भगवान सुख दे सकता है लेकिन सपने का भगवान दुःख भी देगा। भक्ति सपने के ऊपर नहीं उठ पाती।

और भी एक बात ध्यान रख लेनी जरूरी है कि सपने में सदा द्वैत है। सपने में सदा दो हैं और सत्य में सदा अद्वैत। सत्य में सदा एक है। सपने में दो हैं। सपना देखने वाला है और सपना है। भक्ति में भी सदा दो हैं—भक्ति है और भगवान है। देखने वाला है और दिखाई पड़ने वाला है लेकिन सत्य की अनुभूतियें दो नहीं है। अनुभूति और अनुभोक्ता एक है। वहां कोई देखने वाला और दिखाई पड़ने वाला ऐसा दो नहीं है। इसलिये भक्त सदा डरा रहता है। वह भगवान से प्रार्थना करता रहता है—कभी छोड़ के मत चले जाना मुझे छोड़ मत देना; वह सदा यही प्रार्थना करता रहता है—तुम्हारा सत्संग बना रहे, तुम्हारे पास बैठा रहूं, तुम्हारा चरण दबाता रहूं। भक्त कभी द्वैत के बाहर नहीं उठ पाता। द्वैत के बाहर उठ भी नहीं सकता क्योंकि द्वैत के बाहर तभी उठ सकता है जब भक्ति टूटे, भाव टूटे, मन टूटे। तब द्वैत के बाहर उठ सकता है। भक्त द्वैत में जीता है। भक्त कभी ये भी नहीं सोच सकता कि एक ही रह जाय क्योंकि एक ही रह जाय तो भगवान कहां, भक्त कहां होगा ? इसलिये भक्त की आकांक्षा एक रह जाने की नहीं। लेकिन जो है वह एक ही है। फिर सपने को व्यवस्थित, Planned dreaming, व्यवस्थित स्वप्न देखने की प्रक्रिया है, योग है, साधना है। उसके दो-तीन सूत्र ख्याल में ले लेना चाहिये तो भक्ति की पूरी बात साफ हो सकेगी।

अगर आपको व्यवस्थित स्वप्न देखना है क्योंकि भक्ति व्यवस्थित सपने देखता है। ऐसे साधारणतः, स्वप्न तो हम रोज देख रहे हैं लेकिन ये अव्यवस्थित है, अराजक है। हमें पता नहीं कौन-सा सपना हमारे भीतर उतर आयेगा। भक्ति है व्यवस्थित, Planned dreaming हमें जो सपना देखना है वही हमें देखना है और फिर भक्त की अंतिम आकांक्षा ये है कि आँख बंद करके नहीं देखना है, खुली आंखों से देखना है। तो भक्त को फिर स्वप्न के लिए व्यवस्था करनी पड़ती है। स्वप्न की व्यवस्था के लिये तीन सूत्र बड़े जरूरी हैं : पहला सूत्र तो यह जरूरी है – संदेह न हो। जरा भी संदेह होगा, स्वप्न भंग हो जायेगा। श्रद्धा हो, पूर्ण श्रद्धा हो। जरा भी संदेह हुआ तो स्वप्न भंग हो जायेगा। संदेह स्वप्न तोड़नेवाली बहुत अद्भुत चीज है इसलिए संदेह जरा भी भक्ति की दुनिया में प्रवेश नहीं पा सकता। संदेह के लिये वहां उपाय नहीं। वहां अंध–श्रद्धा चाहिये। बिलकुल अंध–श्रद्धा चाहिये। अंधी श्रद्धा का मतलब जहां संदेह का कोई उपाय ही नहीं छोड़ा। मेरे पास आँखें हैं तो मैं कितनी ही आंखें बन्द करूं ये डर है कि कहीं थोड़ा सा खोल के देख न लूं ? आंखें होनी ही नहीं चाहिये तब डर बिल्कुल समाप्त होगा। अंधी–

श्रद्धा, Blind belief भक्ति का पहला सूत्र है, आंख बंद करके स्वीकार कर लो तब सपना पूरा हो सकता है, तब सपने पर संदेह नहीं आयेगा कि जो मैं देख रहा हूं ये कहीं सपना तो नहीं है ? इतना भी आ गया तो सब बात खंडित हो जायेगी। इसलिये भक्ति का पहला सूत्र है—पूरी तरह विश्वास और अगर भगवान खड़े न हों तो भक्ति के समझने वाले लोग कहेंगे, तुम्हारा विश्वास पूरा नहीं है। तुम्हारे विश्वास में कमी है। विश्वास पूरा होने का मतलब ये है कि सपने पर भी, सपना है ऐसा संदेह नहीं रह जाना चाहिये, तभी सपना सत्य मालूम पड़ सकता है। इसलिये भक्त हजारों साल से लोगों को समझा रहे हैं, श्रद्धा करो, पूरी श्रद्धा करो, पूरा समर्पण करो। जरा भी अपने को पीछे मत रखना सोचने के लिये कि मैं भी हूं। सब सोच विचार, सब संदेह, सब तर्क छोड़ दो तब भक्ति पूरी हो सकती है, निश्चित ही।

अगर किसी सपने को सत्य मानना हो तो अंधी-श्रद्धा पहला सूत्र है। अगर किसी सपने को तोड़ना हो तो आंख खोलना पहला सूत्र है। संदेह पहला सूत्र होगा। अंधी श्रद्धा से शुरू होती है भक्ति। फिर अगर सपने को पूरी तरह देखना हो तो उसमें जरा भी असलियत में और सपने में फर्क न रह जाय। थ्री डाइमेंशनल सपना देखना हो, उसमें लम्बाई, चौड़ाई, ऊंचाई सब दिखाई पड़ने लगे, वह बिल्कुल पूरा दिखाई देने लगे तो उसके लिये चित्त कमजोर चाहिए और चित्त स्त्रैण चाहिए। इसलिए पुरुष चित्त भक्त होने की बड़ी कठिनाई है। पुरुष चित्त, पुरुष को नहीं कह रहा हूं क्योंकि बहुत से पुरुष हैं जिनके पास स्त्री का चित्त है और बहुत सी स्त्रियां है जिनके पास पुरुष का चित्त है। पुरुष चित्त सपना नहीं देख सकता ठीक से क्योंकि पुरुष चित्त में पुरुष की जो मनस्थिति है उसमें आक्रमण है। वह एक्टिव है। और सपने के लिए जरूरी है—पैसिव होना, निष्क्रिय होना, ग्रहण करनेवाला होना। स्त्री चित्त सपना देखने में ज्यादा समर्थ है। वह सिर्फ स्वीकार करती है। इसलिए भक्तों ने सब स्त्रैण उपाय अख्तयार कर रखे हैं। अगर कोई ठीक भक्त आपको मिल जाय तो आपको लगेगा कि वह कोई पुरुष है जो स्त्री की यात्रा पर निकल गया है। उसमें सब स्त्रैण बातें प्रगट होने लगेंगी। उसने चित्त पैसिव—स्त्री का पकड़ लिया।

ऐसे भक्त भी हैं जो अपने को स्त्री ही मानने लगे हैं। वह कहते हैं हम तो सखियां हैं कृष्ण की, और ऐसा साधारणतः नहीं मानते वह अगर उनकी पूरा व्यवस्था समझेंगे तो बड़ी हैरानी होगी लेकिन वह व्यवस्था बिल्कुल ठीक होगी। उसके बिना हो भी नहीं सकता, वे इतने दूर तक निकल गये उस यात्रा पर कि रात कृष्ण को ले के सोते भी हैं—बिस्तर पर। और यहीं तक मामला नहीं है। वह जो असली भक्त हैं इस तरह के, जिन्होंने सभी स्त्री-भाव स्वीकार कर रखा है कि कृष्ण ही पुरुष है, हम स्त्री हैं, उसकी स्त्रियां हैं, उनको मासिक धर्म भी होता है चार दिन वे उससे भी रुकते हैं। हो तो नहीं सकता मासिक धर्म और कुछ आश्चर्य भी नहीं कि अगर बहुत Auto-hypnosis हो तो हो भी जाय। वह भी कोई बहुत आश्चर्य नहीं। लेकिन वे चार दिन, जैसे स्त्रियां सब चीजों से दूर रहेंगी, वैसे वह भी दूर रहेंगे। चार दिन उनको मासिक धर्म आ जायेगा। ये असली भक्त हैं जो कि लॉजिकल अंत तक पहुंच गये बिल्कुल, तर्क-गत अंत तक पहुंच गये। जिन्होंने बिल्कुल अपने को स्त्री मान रखा लेकिन भक्त होने के लिए स्त्रैण चित्त अनिवार्य शर्त नहीं है। उसका कारण यह है कि स्त्री का जो चित्त है, स्त्रैण चित्त होता है। वह भावनापूर्ण है, वह ताकतपूर्ण नहीं है। इसलिए स्त्रियों ने कोई बहुत बड़े पंडित पैदा नहीं किये। जैसे मैंने कहा ज्ञानयोगी स्त्रियों ने पैदा नहीं किये। उनके मन का वह हिस्सा उतना बलशाली नहीं है। स्त्रियों ने मीरा पैदा की है, तैरेसा पैदा की है और कुछ लोग पैदा किये हैं लेकिन स्त्रियों में पंडित और शास्त्र निर्माण करनेवाले, शास्त्र निर्माता और System makers और दार्शनिक नहीं पैदा किये। कपिल कणाद या महावीर या बुद्ध तरह के लोग स्त्रियां पैदा

नहीं कर सकतीं। स्त्रियों ने पैदा किये भक्त। और पुरुष में भी जो लोग स्त्रैण-चित्त के हैं उनके लिये ज्ञान-मार्ग नहीं रह जाता। भक्ति उनके लिये मार्ग है। वह भगवान को पति मानकर उसके आसपास जीने लगते हैं।

दूसरी शर्त है स्त्रैण-चित्त, कमजोर, संकल्पहीनता संकल्प पूरा छूट जाना चाहिए। आक्रमण का भाव छूट जाना चाहिए। बस सिर्फ Just a passive awaiting, एक प्रतीक्षा निष्क्रिय कि आओ, आओ। पुकार, रोना, छाती पीटना कि आओ। अगर कोई आदमी, ज्यादा दिन नहीं, आप प्रयोग करके देखें सिर्फ इक्कीस दिन काफी हैं—इस तरह भगवान का दर्शन करने के लिए। इससे ज्यादा की जरूरत नहीं। इक्कीस दिन के लिए पूरे अंधे होकर स्वीकार कर लें और इक्कीस दिन के लिए सिर्फ प्यास, पुकार, चिल्लाना, रोना, गाना, छाती पीटना जारी रखें। सुबह से सांझ हो जाये, सांझ से सुबह हो जाये। उसके साथ जागें, उस मूर्ति को खाना खिलायें, भोजन करवायें, स्नान करवायें, उस मूर्ति को जिंदा मान लें और उस मूर्ति के आसपास अपने भावों का रचते चले जायें। और श्वांस श्वांस उसी में रंग जाये तो इक्कीस दिन से ज्यादा जरूरत नहीं। इक्कीस दिन काफी हैं और इक्कीस दिन में आप पायेंगे कि भगवान के दर्शन होने शुरू हो गये। उसका मतलब है आप पागल होने की सीमा पर पहुंच गये। आप पागल हो गये। आपका दिमाग खराब हो गया। इससे खराब करना हो तो, और जल्दी खराब करना हो तो, उपवास कर लेना बहुत अच्छा है। इक्कीस दिन उपवास भी कर लें क्योंकि जितने कमजोर हो जायेंगे उतने ही सपने प्रबल हो जायेंगे। उपवास करलें। बहुत आसानी हो जायेगी। उपवास करने से नींद खो जायेगा। इसलिए नींद में जो वक्त चला जाता है और रटन नहीं हो पाती भगवान की, वह भी जारी हो जायेगी। तो नींद में भी रटन होनी चाहिए। नींद में भी भगवान–भगवान जो भी आपके भगवान की इच्छा हो, उनकी रटन रहनी चाहिए। नींद कम हो जायेगी रटन जारी रखें भूखे। उपवास में भूख को भुलाने के लिए भी रटन जारी रखनी पड़ेगी। जिस दिन कोई उपवास करता है वह मंदिर में बैठ जाते हैं क्योंकि घर में हो तो भूख की याद आ जाती है। मंदिर में भूख की याद नहीं आती। वहां झांझ, मंजीरा पीटने लगते हैं तो वह भूख का पता नहीं चलता। भूख दब जाती है और भूखा जो मन है उतनी ही कल्पना प्रबल हो जाती है और एकांत में चले जायें। भीड़भाड़ सपने देखने में बाधा डालती है। एकांत में चले जायें। एकांत में हमारे देखने की क्षमता में स्फुरण होती है।

जैसे हम यहां इतने लोग बैठे हैं। अगर रात हम सारे लोग यहां सो जायें तो कोई बात नहीं लेकिन इस जगह एकाध् आदमी इधर रात अंधेरे में सो जाये, जरा सा पत्ता खड़कता है तो उसे लगता है कोई आता है, किसी के पैर की आवाज सुनाई पड़ी। खुद ही शाम को स्नान करके पेन्ट टांग दिया है रस्सी पर और रात घर में अकेले हैं तो लगता है कोई आदमी खड़ा है, दो टांगें मालूम पड़ रही हैं। खुद ही टांगा है शाम को ये पेन्ट। अकेला आदमी रह जाय तो उसकी कल्पना प्रगाढ़ हो जाती है। वह कल्पना का काम करने लगती है। दूसरा आदमी हो तो कल्पना पर रुकावट होगी। इसलिए भक्त को एकांत चाहिए। एकांत मिल जाये और वह रह जाय, उनके भगवान रह जायें तो बस फिर ठीक है। बहुत जल्दी मस्तिष्क रूग्ण हो सकता है। भक्तों ने और भी इस तरह के उपाय किये जिनसे मस्तिष्क को, ये भाव की क्षमता तीव्र हो जाये। गांजा पिया है, अफीम खायी है, चरस पिया है और अब अमरीका में नये वैज्ञानिक साधन खोज लिए हैं। एल. एस. डी. मेस्कलान, मेरी जुआना और भी नयी चीजें खोज ली हैं। वे चीजें और भी अच्छी हैं। अगर किसी को भक्ति में जल्दी आना हो तो वैज्ञानिक विधियां और अच्छी हैं। क्योंकि वैज्ञानिक विधि का इतना ही मतलब होता है—अवैज्ञानिक बैलगाड़ी के ढंग से चलता है, वैज्ञानिक विधि जेट प्लेन की तरह चलती है, तेजी से चलता है।

एलडुअस हक्सले ने एक किताब लिखी है—Doors of Perspection 'नए दर्शन के द्वार' और

उसमें उसने ये सलाह दी है कि अब कोई मीरा और कबीर की तरह मेहनत करने की जरूरत नहीं है। एल. एस. डी. का उपयोग कर लेने से, लीसर्जीक एसीड को ले लेने से फौरन आदमी भक्ति की अवस्था में पहुंच जाता है। फिर जो भी देखना चाहता है देख लेता है। जो भी देखना चाहे और जो भी मान ले वह सत्य हो जाता है। क्योंकि यह जो केमिकल चेन्जेस हैं, मस्तिष्क में जाकर तत्काल आक्रांत कर देते हैं। समस्त तर्कबुद्धि श्रद्धापूर्ण हो जाती है। समस्त विचार को क्षीण कर देते हैं। संदेह नष्ट हो जाता है। और जैसे रात में हम सपना देखते हैं ऐसा ही मन उस हालत में आ जाता है जबकि वह चित्र पैदा करने लगता है। जिन लोगों ने एल. एस. डी. लिया है अब तो लाखों लोगों ने, करोड़ों लोगों ने लिया है, उनकी अगर बात आप सुनें, अगर पढ़ें तो बड़ी हैरानी होगी। उन्हें ऐसे रंग दिखायी पड़ने लगते हैं जो हमें कभी दिखाई नहीं पड़े। उन्हें ऐसी प्रतिमायें दिखाई पड़ने लगती हैं जो हमें कभी दिखाई नहीं पड़ती। उन्हें ऐसे पक्षी उड़ते दिखायी पड़ते हैं जो कभी नहीं उड़े। उन्हें ऐसी ध्वनियाँ सुनाई पड़ने लगती हैं जो हमने कभी नहीं सुनीं। अनाहत नाद वगैरह बहुत सुनाई पड़ता है, एल. एस. डी. लेने से। बड़े अद्भुत संगीत सुनाई पड़ने लगते हैं। अद्भुत फूल खिलने लगते हैं। और अगर कोई भगवान का भक्त हो तो, भगवान तत्काल मौजूद हो जाते हैं। एल. एस. डी. पूर्ण श्रद्धा दे देता है। चित्त को स्त्रैण बना देता है, और समस्त विचार की शक्ति को छीन लेता है। वह केमिकल ड्रग है। लेकिन अब जो खोजबीन हो रही है वह यह बताती है कि लम्बे उपवास से मनुष्य में रासायनिक परिवर्तन होता है, और एल. एस. डी. देने से भी रासायनिक परिवर्तन होता है, ब्रह्मचर्य को जबरदस्ती से साधने से भी रासायनिक परिवर्तन होता है। और प्राणायाम करने से भी रासायनिक परिवर्तन होता है। उस पर जो खोजबीन चली है वह घबड़ाने वाली है। वह यह कहती है कि यह सब केमिकल चेन्जेस हैं। एक आदमी जो बहुत जोर से श्वाँस लेकर प्राणायाम करता है तो उसके शरीर का पूरा केमिकल बैलेंस बदल जाता है क्योंकि ऑक्सीजन ज्यादा हो जाती है और कार्बन-डाय-ऑक्साइड कम हो जाती है और उसके व्यक्तित्व का भीतर से सारा रासायनिक सतुलन बिगड़ जाता है। वह रासायनिक सतुलन बिगड़ जाय तो चित्त के सपने देखने की क्षमता तीव्र हो जाती है।

ये जो नई केमिकल रिवोल्यूशन हो रही है—सारी दुनिया में, यह जो नई रासायनिक क्रांति की एक धारणा आ रही है कि भगवान से मिलने के लिए एल. एस. डी. का इंजेक्शन ले लेने की जरूरत है। या एक गोली खा लेने की जरूरत है या मारीजुआना ले लेने की जरूरत है, अब साधना करने की कोई जरूरत नहीं है। अगर भक्ति साधना है तो अब भविष्य में भक्ति कोई नहीं करेगा। भविष्य में तो टेबलेट मिल जायेगी केमिस्ट की दुकान से। जिसको आप खा लेंगे और भक्त हो जायेंगे। नाचने लगेंगे, गाने लगेंगे और एकदम भगवान दिखाई पड़ने लगेंगे। अपने अपने भगवान दिखाई पड़ेंगे।

अभी एक आदमी न्यूयार्क में एल. एस. डी. लिया। अपनी चालीसवीं मंजिल के मकान में सोया। उसको सदा सपना आता था कि वह आकाश में उड़ता है। कई लोगों को आते हैं। जमीन पर रहने वालों को आकाश में उड़ने का सपना आये ये कोई आश्चर्यजनक नहीं, अ येगा। किसके मन में इच्छा नहीं होती कि उड़ जाय। महत्वाकांक्षी चित्त को उड़ने का सपना आता है। वह Ambition का प्रतीक है। वह इस बात का प्रतीक है कि हम सब नीचे की चीजों से ऊपर उड़ गये। सब नीचे छूट गये, हम ऊपर उड़ रहे। उसको भी सपना आता था कि वह आकाश में उड़ता है। एल. एस. डी. लेकर बड़ा मुश्किल हो गई। एल. एस. डी. लेकर उसकी आँखों में फौरन दिखायी पड़ा कि मैं पक्षी हो गया हूं। और वह अपनी चालीसवीं मंजिल पर से निकल कर उड़ गया। हड्डी पसली नहीं मिली! क्योंकि एल. एस. डी. इतना भ्रम दे देता है कि जो भी मालूम पड़ता है वह सच मालूम पड़ता है। उसमें संदेह होता ही नहीं, क्योंकि चित्त बिलकुल संदेह से मुक्त हो जाता है। उसे

एक बार भी ख्याल नहीं आया कि मैं पक्षी कैसे हो सकता हूं।

सपने में आपको ख्याल आया है ? जब आप सपने में पक्षी हो जाते हैं तब आपको ख्याल आया है कि मैं पक्षी हो कैसे सकता हूं ? नहीं, सपना पूर्ण विश्वास से भरा होता है। सपने में कभी शक नहीं आता कि मैं पक्षी कैसे हो सकता हूं ? हां, जागने पर आता है। सुबह जागके आप सोचते हैं कि क्या फिजूल की बात मैंने देख कि मैं पक्षी हो गया था कि घोड़ा हो गया था कि ये हो गया था कि वो हो गया था। और मजा ये है कि सपने में इतनी असंदिग्ध आस्था होती है कि अगर पक्ष से एकदम से घोड़ा हो जायें तो भी ख्याल नहीं आता कि अभी पक्षी था तो घोड़ा कैसे हो गया ? नहीं सपने में संदेह होता ही नहीं। इसलिए मैंने कहा कि सपना देखने के लिए संदेह छोड़ना पहली शर्त है। पूर्ण श्रद्धा पहली शर्त है। एल. एस. डी. पूर्ण श्रद्धा पैदा कर देती है। वह आदमी उड़ गया। उड़ तो गया लेकिन पक्षी तो वह नहीं था—आदमी गिरा और मर गया। लेकिन हो सकता है कि मरते वक्त वह यही सोच रहा हो कि पक्षी ही मर रहा हूं क्योंकि वह तो एल. एस. डी. की हालत मे था।

साधुओं ने, भक्तों ने बहुत पुराने जमाने से, वेद के युग से लेकर आज तक, वेद में जिसे सोमरस कहते हैं वह आज का वैज्ञानिक एल. एस. डी., मेस्कलीन से भिन्न नहीं है। सोमरस से लेकर एल. एस. डी. तक भगवान को खोजने वाले ने सब तरह के नशों का उपयोग किया है। और सब तरह के नशों में उसने और सूक्ष्मतम नशे जोड़े। सूक्ष्मतम नशे जोड़ता गया। संगीत भी नशा लाने में उपयोगी है। अगर जोर से झांझ-मंजीरा पीटा जाय, बीस घंटे आपके चारों तरफ, तो आपका सिर घूमने लगेगा। उसको तो करके देख सकते हैं। उसे करने में कोई कठिनाई नहीं। और अगर बीस आदमी नाच रहे हों तो इक्कीसवां आदमी कितनी देर तक बिना नाचे बैठा रहेगा ? थोड़ी देर में उसके हाथ-पैर फड़फड़ाने लगेंगे। उस आदमी में केमिकल चेंज होना शुरू हो गया। उसको नशा पकड़ने लगा। वह बास आदमी झाँझ, मजीरा पीट रहे हों उसके कानों में झांझ मंजीरा पड़ रहा हो तो बुद्धि कुंठित हो जाती है, तर्क खो जाता है। वह आदमी भी नाचने से लग गया। और जब पैर फड़कने लगते हैं और नाच शुरू हो जाता है, भक्तों ने बड़ा उपयोग किया है—संगीत का क्योंकि संगीत बहुत मादक है। संगीत बहुत शराब के निकट है ध्वनियों के निरंतर आभास से कान पर नशा पैदा किया जा सकता है। भक्तों ने सौंदर्य का उपयोग किया है। सौंदर्य भी बहुत मादक हो सकता है। सुगंध का उपयोग किया है जो चित्त को नशे में ले जाये और चित्त की तर्क-प्रतिभा को नष्ट कर दे। सोचने-विचारने को मिटा दे और ऐसी हालत आ जाय कि जहां जो हो रहा है उस पर पक्का भरोसा और विश्वास हो जाय। बस फिर भगवान के दर्शन होने में कठिनाई नहीं है। मैं आपसे कहना चाहता हूं—भक्ति से कोई कभी भगवान तक नहीं पहुंचा। भक्ति से उस भगवान तक लोग पहुंच गये हैं जिस तक पहुंचना चाहा था। उस भगवान तक नहीं—जो है। भाव छोड़ देना पड़ेगा। भक्ति भी छोड़ देनी पड़ेगी क्योंकि भक्ति और भाव मन का ही एक हिस्सा है। मन के पार जाना पड़ेगा। मन के ऊपर उठना पड़ेगा। मन को Transcend किये बिना, मन के ऊपर उठे बिना, सत्य का कोई अनुभव नहीं हो सकेगा।

एक मित्र ने पूछा है कि आप कहते हैं सत्य को शब्द में नहीं कहा जा सकता ? उसको जिसे हम मन के ऊपर उठाके जानें, उसे कहने का कोई उपाय नहीं क्योंकि कहने के लिए मन की ही जरूरत पड़ती है। मन के माध्यम से जिसे नहीं जाना, उसे मन के माध्यम से कहना संभव नहीं है। लेकिन उन्होंने पूछा है कि दो और दो चार होते हैं ये तो सत्य है, ये तो आप कह ही सकते हैं। उनको पता नहीं है कि दो और दो चार सत्य नहीं है। सिर्फ मान्यता है। सत्य नहीं है सिर्फ हमारी मान्यता है। दो और दो पांच भी हो सकते हैं और दो और दो छः भी हो सकते हैं। हमारी मान्यता की बात है। उनको शायद पता नहीं है गणित का बहुत। आइन्स्टीन तीन ही संख्या का उपयोग करता था—एक, दो, तीन। वह कहता था दस तक की संख्या

मानने की कोई जरूरत नहीं है। आपने कभी सोचा है कि दस तक की संख्या ही क्यों होती है फिर दस का ही फैलाव ? शायद आपको ख्याल ही न हो, दस तक की संख्या का कारण बहुत अद्भुत है। कोई बहुत गणित का कारण नहीं है। आदमी के हाथ में दस ऊंगलियां हैं, इतना ही कारण है। और कोई कारण नहीं क्योंकि आदमी ने ऊंगलियों से गिनना शुरु किया तो पहले उसे दस की गिनती पकड़ गई इसलिए सारी दुनिया में दस की संख्या चलती है। क्योंकि सारी दुनिया में दस ऊंगलियां होती हैं। दस ऊंगलियों से दस की गिनती बन गई। दस की संख्या बनने की वजह से दो और दो चार हो गये हैं। आइन्स्टीन कहता था, एक, दो, तीन काफी हैं। अगर तीन की संख्या मान ली जाय तो दो और दो चार कैसे हो सकते हैं ? क्योंकि चार का तो अंक ही न रहा। एक—दो—तीन के बाद आयेगा दस-ग्यारह-बारह-तेरह। तेरह के बाद आएगा बीस-इक्कीस-बाईस तेईस। दो और दो कितने होंगे ? दस होंगे, अगर तीन की संख्या मान ली जाय। यह सब मान्यता की बात है। सत्य से कुछ लेना देना नहीं। गणित बिल्कुल मान्यता है। हमारा माना हुआ खेल है, संख्याओं का खेल है। हमने मान लिया है वैसा चल रहा है। भाषा हमारी माना हुआ खेल है। Language बिल्कुल ही खेल है। हमने मान रखा है वैसा चल रहा है। अगर एक आदमी भी इन्कार कर दे तो हम उसको राजी नहीं कर सकते। हम कहते हैं कि ये हाथ है। अगर एक आदमी उससे कहे कि हम हाथ इसे क्यों माने ? तो दुनिया की कोई ताकत नहीं है जो उसे समझाये कि हाथ उसे मानना जरूरी क्यों है ? वह कहता है कि हम Hand मानते हैं तो Hand माने। और वह कहे कि हम यह भी नहीं मानते हैं तो दुनिया की हजारों संख्या है जिसने हाथ के लिये अपना-अपना खेल हैं। सब भाषायें खेल हैं। कोई जबरदस्ती नहीं है कि ये हाथ ही क्यों है ? ये जो है वो है—बाकी सब आपका खेल है। आपको जो चाहे वो लगा दो। इसमें कोई झंझट नहीं आती। हाथ कभी कहता नहीं कि मैं कौन हूं ? आपकी जो मरजी, वो कहें। हम दस आदमी तैयार हो जाते हैं कि हम इसको हाथ कहेंगे, हम दस के लिये भाषा कारगर हो जाती है।

भाषा मान्यता है। सत्य मान्यता नहीं है इसलिये जहाँ तक भाषा है, वहाँ तक सत्य का पता नहीं चलता। लेकिन मन के छूटते ही भाषा भी छूट जाती है। जहाँ तक गणित है, वहाँ तक सत्य का पता नहीं चलता लेकिन मन से छूटते ही गणित भी छूट जाता है। मन गया कि सब गया। और तब जो शेष रह जाता है वह क्या है ? इसे जानने के सिवा और कोई उपाय नहीं। मेरे कहने से कुछ पता नहीं चलेगा। किसी और के कहने से कुछ पता नहीं चलेगा। हां, इतना ही पता चल सकता है कि शायद कुछ हो जो हमारी घर की दीवारों के बाहर भी है। आप जायें घर की बाहर की दीवार की तरफ, बाहर खड़े हो जायें। मैं इतना ही कह सकता हूं, घर की दीवारों के भीतर नहीं है। इसलिये परमात्मा के संबंध में जो भी कहा गया है वह सदा निषेधात्मक है, नेगेटिव है। वह नेति नेति है। इतना ही कहा जा सकता है ये भी नहीं है ये भी नहीं है। इतना ही कहा जा सकता है Not this, Not that.

तो आप पूछेंगे क्या है ? वह नहीं कहा जा सकता। इतना ही कहा जा सकता है कि इस मकान की दीवार में भी नहीं है। उस दीवार में भी नहीं है। आप पूछेंगे तो फिर किस दीवार में है ? तो मुझे चुप रह जाना पड़ेगा। दीवार में तो नहीं है। दीवार के बाहर है। और आप सब दीवारों के बाहर चले जायें तो मिल जाये। इसलिये सत्य की सारी खोज निषेध की खोज है। परमात्मा की सारी खोज निषेध की खोज है। जो आदमी सबको इनकार कर पाता है, अंततः उसे उपलब्ध हो जाता है जो है। लेकिन अगर आप इन्कार करने में कमजोर हैं और आपने कहा कैसे इन्कार करूँ ? भक्ति को कैसे इन्कार करूँ ? ज्ञान को कैसे इन्कार करूँ कर्म को कैसे इन्कार करूँ ? पंडित को कैसे इन्कार करूँ ? तो आप पंडित, पूजा, भक्ति, ज्ञान की दीवारों के भीतर खड़े रह जायेंगे। सत्य के बाहर नहीं पहुंच सकते। और यह सब खेल है भाव का। और ज्ञान खेल

है विचार का। और कर्म खेल है मन के कर्म की पर्त का।

कल हम उस तीसरी पर्त के बारे में विचार करेंगे कि ये कर्म का खेल क्या है? अगर आप सारे खेलों के बाहर हो जायेंगे, हो सकते हैं, हैं ही लेकिन आपको पता नहीं, ख्याल नहीं, स्मरण नहीं। अगर बाहर हो जायें तो जिसे आप जानेंगे, जिसके लिए कोई शब्द बताने वाला नहीं है। जिसके लिए कोई चित्र बताने वाला नहीं है। जिसके लिये कोई मूर्ति बतानेवाली नहीं। जिसके लिये कोई इशारा नहीं किया जा सकता, कि वह रहा क्योंकि इशारे में बड़ी गड़बड़ है अंतिम बात कहूं। इशारे में बड़ी भूल है अगर मैं कहूं वह रहा, तो इशारा सदा सीमित कर देता है क्योंकि इशारे के बाहर जो है फिर वह कौन है? हम किसी सीमित चीज के संबंध में इशारा कर सकते हैं कि वह रहा। कह सकते हैं कि वह रहा लेकिन फिर बाकी जो इशारे के बाहर रह गया वह क्या है? परमात्मा के संबंध में इशारा नहीं हो सकता ऊंगली बताकर। उसके सम्बन्ध में इशारा हो सकता है—मुट्ठी बाँध के कि यह रहा। यह रहा का मतलब ये कि हम कभी इशारा नहीं कर सकते। उसके लिये इशारा किया तो गड़बड़ हो जायेगा। अगर हमने कहा Some where तो फिर वह Every where नहीं हो सकता। अगर हमने कहा वहाँ है तो सब जगह कैसे होगा? जिसे सब जगह होना है, जिसे Every where होना है उसे No where होना पड़ेगा। जिसे सब जगह होना है उसे कहीं भी नहीं होना पड़ेगा। इसलिये कोई इशारा काम नहीं करता। कोई संकेत काम नहीं करता। लेकिन फिर क्या रास्ता है? सब संकेतों को गिरा दें, सब इशारों को गिरा दें।

एक मित्र ने पूछा है—आप कहते हैं ज्ञान भी मार्ग नहीं, भक्ति भी मार्ग नहीं, कर्म भी मार्ग नहीं, तो मार्ग क्या है?

मैं यह कह रहा हूं मार्ग ही नहीं है तो मेरा मार्ग मत पूछें क्योंकि मैं अपना मार्ग बता दूं तो वह चौथा मार्ग हो जायेगा। वह भी नहीं है। मार्ग ही नहीं है और जो आदमी समस्त मार्गों के बाहर खड़ा हो जाता है वह वहाँ पहुंच जाता है। मार्ग के बाहर होने के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं है।

मेरी बातों को इतनी शांति और प्रेम से सुना उससे अनुगृहीत हूं और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें। ●●●

आवश्यक सूचना

गत वर्ष युक्रांद का 'आचार्य रजनीश-जन्म दिवस विशेषांक' प्रेमियों द्वारा कितना पसंद किया गया, इसका अनुभव इसी से लग जाता है कि आज भी प्रेमियों के इस आशय के सुझाव एवं आग्रह आते रहते हैं कि उस तरह के विशेषांक कभी-कभी निकालते ही रहें। इस वर्ष तो हम कई विशेषांक नहीं निकाल पाये परन्तु आचार्य श्री के जन्म दिवस पर पुनः विशेषांक निकले, ऐसा ख्याल है। अतः प्रेमियों का सहयोग निवेदित एवं अपेक्षित है। प्रेमी आचार्य श्री से संबंधित संस्मरण व भाव आदि लिख भेजें। आचार्य श्री द्वारा लिखे गए पत्र भी भेजे जा सकते हैं। आचार्य श्री के किन्हीं विचारों की स्वस्थ आलोचना भी प्रकाशित की जा सकेगी।

विशेषांक का संपादन पुनः आचार्य-प्रेमियों में सुपरिचित स्वामी अगेह भारती करेंगे, अतः विशेषांक हेतु रचनाएं सीधे उन्हीं के, पते पर भेजें। उनका पता इस प्रकार है:—

स्वामी अगेह भारती

जेड. २१७ 'सी' अपर लाइन्स जबलपुर (म० प्र०)

भगवान श्री के पत्र : प्रेमी साधकों को

(सुश्री जसु, राजकोट (गुज०) को लिखा गया एक पत्र)

प्यारी जसु,
प्रेम । सूर्य को पाने की अभीप्सा है, तो जरूर ही पा सकेगी ।
लेकिन, जलने का साहस चाहिये ।
बिना मिटे प्रकाश नहीं मिलता है ।
क्योंकि, हमारी अस्मिता ही अंधकार है ।
फिर सूर्य बाहर भी तो नहीं है ।
भीतर जब सब जलता है, तभी तो वह जन्मता है ।
स्व का जल उठना ही तो प्रकाश है ।
अंधकार है मिटने का भय ।
आलोक है मिटने के लिये छलांग ।
मिट और जान ।
खो और पा ।
इसीलिये तो मैं प्रेम को प्रार्थना कहता हूं ।
क्योंकि वह मिटने की प्राथमिक शिला है ।
रमा को प्रेम ।
सब को प्रणाम ।

रजनीश के प्रणाम
१७-४-१९७०

(श्री अश्विनी, गव्हर्मेंट इंजीनियरिंग कालेज, जबलपुर को लिखा गया एक पत्र)

मेरे प्रिय ।
बूंद मिटती है तो सागर हो जाती है ।
बीज मिटता है तो वृक्ष हो जाता है ।
मनुष्य मिटता है तो प्रभु हो जाता है इसलिये ही चाहा कि तुम मिटो क्योंकि मिटना ही होने (Being) मार्ग है ।
बचाना मत स्वयं को अन्यथा गिरोगे ।
मिटना ताकि बच सको ।
धर्म का यही सनातन नियम है ।

असल में धर्म और प्रेम एक ही सत्य के दो नाम हैं इसलिये मेरा प्रेम भी वहां करता है जहां कि प्रेम ही कर सकता है।

सागर सामने है।

लेकिन भय के कारण हमारी आंखें बन्द हैं।

सागर सामने है।

लेकिन भय के कारण हम तट पर ही पैर गड़ा कर खड़े हो गये है।

मैंने तुम्हें तट से धक्का दे दिया है

और तुम्हें सागर मे दूर खोता जाता देख प्रभु को धन्यवाद दे रहा हूं।

भूलकर भी लौट मत आना।

अज्ञात की पुकार को सुनना और आगे और आगे बढ़ते जाना।

ज्ञात को भूल ही जाना।

उसे पकड़कर रुक जाने के अतिरिक्त और कोई अज्ञान नहीं है।

अज्ञात की बांहों में स्वयं को छोड़ देना, क्योंकि उसके अतिरिक्त और कोई ज्ञान नहीं है। सागर डुबोयेगा तो डूब जाना।

क्योंकि सागर से एक हुये बिना सागर को जाना भी कैसे जा सकता है?

रजनीश के प्रणाम
१०-६-१९७०

(श्री बाबूभाई, सूरत (गुजरात) को लिखा गया एक पत्र)

मेरे प्रिय,

प्रेम आपका पत्र पाकर आनदित हूं।

प्रकाश पैदा हो तो ही अधकार से संघर्ष भी पैदा होता है।

शुभ पैदा हो तो ही अशुभ को चुनौती भी मिलती है।

इसलिये ही समस्त इतिहास द्वन्द का इतिहास है।

लेकिन, विकास का और कोई भी मार्ग नही है।

विकास अर्थात संघर्ष।

विकास अर्थात द्वन्द।

विकास अर्थात युद्ध।

इसलिये, द्वन्द से भय न करें।

संघर्ष से भागें नहीं।

युद्ध से मुख न मोड़ें।

युद्ध के तल ही बदलते हैं, युद्ध नहीं।

जैसे कि मैं अब तक चले आये युद्धों के विरोध में हूं।

क्योकि, अब नये तलों पर और नये आयामों में युद्ध करना है।

पुराने युद्ध भी अब व्यर्थ हो गये हैं।

अब उनसे भी युद्ध करना है।
शरीर के तल पर नहीं अब चेतना के तल पर संघर्ष होना है।
क्योंकि, मनुष्यता की भावी छलांग अब उसी भूमिका में हो सकती है।
राम भी युद्ध में हैं।
कृष्ण भी
बुद्ध, महावीर भी।
मुहम्मद, जीसस भी।
बीज जैसे भूमि से लड़ता है अंकुर होने को।
ऐसे ही उनका भी युद्ध है।
मनुष्यात्मा के बीज को वृक्ष तक पहुंचाने का संकल्प ही विपरीत गामी शक्तियों से युद्ध बन जाता है।
आलोक की कामना ही अंधकार से युद्ध है।
अमृत की अभीप्सा ही मृत्यु से युद्ध है।
और इसलिये ही जब भी कोई आलोक पुंज जन्मता है, तभी युद्ध की त्वरा बढ़ जाती है।

रजनीश के प्रणाम
९-६-१९७०

(सुश्री सुधाजी, मोदी नगर, यू. पी. को लिखा गया एक पत्र)

प्यारी सुधा,
प्रेम। तुम्हारा पत्र मिला है।
मैं जानता हूं कि नारी की गुलामी गहरी है।
क्योंकि, मूलतः वह मानसिक है।
लेकिन, फिर भी निराश होने का कोई भी कारण नहीं है।
बिना लड़े जीने से, लड़कर हारना भी कहीं ज्यादा आनंद पूर्ण है।
और फिर विद्रोह का आनंद जीत में नहीं, विद्रोह में ही है।
जीत मिले, तो भी वह गौण है।
और जो सफलता को सुनिश्चित करके ही संघर्ष में उतरता है, वह विद्रोही कभी भी नहीं हो सकता है।
वही लक्षण तो प्रतिगामी का है।
विद्रोह है असुरक्षा।
लेकिन, असुरक्षा की स्वतंत्रता सुरक्षा के पिंजड़ों में बंद पक्षी कैसे जान सकते हैं।
पिंजड़े में भी आकाश है, लेकिन क्या सच ही वह आकाश है?

रजनीश के प्रणाम
३१।३।७०

गीत

तथाता के चरणों में सप्रेम

तुम्ही मेरे मंदिर, तुम्ही मेरी पूजा
तुम्ही प्रार्थना हो, तुम्ही साधना हो
तुम्ही मेरी अखियों में ज्योति हो झिलमिल,
सांसों की धड़कन में तुम्हारी है हलचल
मुझ मरुस्थल में तुम्ही हो शीतल जल
नये नये फलफूल खिलते हैं पलपल।......तुम्ही (१)
तुम्ही मेरे कृष्ण, तुम्ही मेरी गीता
तुम्ही मधुर बंसी की संगीत सरिता
मैं हूं एक छोटी सी तान का टुकड़ा
अपनी ही मुरली में मुझको बजा लो
मैं हूं एक छोटा सा झंकृत झरना
संगीत सरिता में मुझको बहा लो ।......तुम्ही (२)
सुदर्शन की धार बाजी, नेपुर की छुनछुन
सुनसुन के मैं भी लेती हूं गुनगुन
खाती हूं, पीती हूं उसमें से चुनचुन
नस नस में रहती हूं उनको ही बुनबुन ।......तुम्ही (३)
तुम्ही ने स्वयं में जीना सिखाया
जीते जी मुझको मरना दिखाया
हँसना सिखाया, मुझ पर रोना सिखाया
भरभर प्रेम-प्याला भी पाया ।......तुम्ही (४)
तुम्ही हीरे-मोती, सोने के गहने
अंतरंग मैंने हँसकर पहने
तुम्ही मोक्ष मेरे, स्वर्ग का खजाना
नर्क में भी मैंने तुम्ही को जाना ।......तुम्ही (५)
तुम्हें देखकर यह ख्याल आ रहा है कि,
जैसे फरिस्ता कोई आ गया है,
कि, जैसे कृष्ण फिर आ गये हैं,
फिरसे गीता कही जा रही है ।......तुम्ही (६)
तुम्ही मेरी मंजिल नहीं कोई दूजा,
यही नाद मेरी नाभि में गूंजा;
मैं हूं एक छोटी सी माटी की गुड़िया,
तुम्ही प्राण मेरे, तुम्ही आत्मा हो ।......तुम्ही (७)
तुम्ही मेरे मंदिर, तुम्ही मेरी पूजा
तुम्ही प्रार्थना हो, प्रेम देवता हो ।......

जयवती के प्रणाम (मा योग मीरा, जूनागढ़)

With Best Compliments

From

PLAST—CON PACKAGING PVT. LTD.

MANUFACTURES OF :

Industrial Plastic Packaging of all type
Plastic Novelty Items.
Textile Components.
Plastic Caps.

WORKS :
312, A To Z Industrial Estate
Fergusson Road, Lower Parel,
Bombay : 13
Telephone : C/o 370692

OFFICE :
3-4, Sambava Chambers
20, Sir P. M. Road,
Fort, Bombay–1
TELE.
Office : 261794
252160
Res. 365512

स्वामी धर्म सरस्वती

मानसेवी संपादक : अरविन्द कुमार । सह-संपादक : आलोक कुमार पाण्डे । व्यवस्थापक : (श्री आर. आर. मिश्रा)

स्वत्वाधिकारी प्रकाशक : अरविन्द कुमार, ७६० राइटटाउन, जबलपुर ।

सौजन्य संपादक : कनु शेठ, B. Sc. (Ag.)

मुद्रण : श्रीपाल प्रिन्टर्स, १६१, कोतवाली वार्ड, जबलपुर से मानसेवी संपादक अरविन्द कुमार के लिये मुद्रित ।

वर्ष : ३ ॥ १ एवं १६ जुलाई ७१ ॥ अंक : १-२ ॥ मूल्य : १.००

॥ वार्षिक मूल्य : १२.०० ॥

With Best Compliments

From

●

KANI & Co.

Paper & Boards Merchants

Stockists : Bellarpur & J. K. Paper

●

9, New Marine Lines,

Opp. : Liberty Cinema, Bombay-20

Tele.-291570

मुखपृष्ठ : श्री दीनू रावल, राजकमल स्टुडियो, राजकोट